लोक चेतना

जगदीश सिंह वोहरा

H
812.8
V 87 L

H
812.8
V 87L

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

लोक चेतना

जगदीश सिह वोहरा

वोहरा प्रकाशन
१/१३४८३-ए, मन्दिर वाली गली युसुफ सराय,
नई दिल्ली-११००१६

सर्वाधिकार सुरक्षित

Library IIAS, Shimla
H 812.8 V 87 L
00090690

प्रकाशक—अमरजीत वोहरा

1st edn 1971

१९९३

H
812.8
V 87 L

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 90690
Date 26-11-98

मूल्य—३५ रुपये

लोक चेतना

पात्र सूची—

रामउपकार	राज्य मन्त्री
दयावंती	उस की पत्नी
महिंदर	उस का पुत्र
राजरानी	उस की पुत्री
महाराज कृष्ण	राज्य सचिव
रंजनादेवी	उस की पत्नी
मीनाक्षी	उसकी पुत्री
केवल कृष्ण	उसका पुत्र
बलवंत	एक उच्च शिक्षित युवक
प्रबोध	निजी सहायक
प्रधान मन्त्री	पार्टी अधिकारी

अन्य चार मजदूर और चार विद्यार्थियों के नेता आदि—

दो शब्द

आज की तेज़ी से बिगड़ती आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था ने जिस पड़ाव पर देश को ला दिया है, उससे आश्चर्य नहीं होता । इतने वर्षों से जो कुछ होता आया है उसकी प्रतिक्रिया ऐसी ही हो सकती थी !

इस स्थिति के पीछे मूल कारण यही है कि यह समाज जो बार-बार ऐसी स्थितियों से गुज़रा है, इतिहास ने जिसे बार-बार कुचला और प्रताड़ित किया है, उस में अभी यह चेतना ही नहीं आ पाई कि वास्तव में वह पहले क्या था और अब क्या हो गया है । आज एक विकृत स्थिति ही उसके लिए सही स्थिति बन चुकी है । भ्रष्टाचार जिस के लहू में रच चुका हो, कर्तव्य से जहां जी चुराया जाता हो, जहां समाज या देश के लिए कुछ करने का कोई संकल्प न हो, किसी भी प्राणी या परिवार के लिए कुछ भी हो सकता हो, वहां देश कहां तक ऊपर उठे ?

मेरे विचार में जब तक हमारी परम्पराएं नहीं बदलतीं, विचार-धाराएं नहीं सुधरतीं, नई चेतना नहीं पनपती, यह समाज ऊपर नहीं उठ सकता । पार्टी कोई भी हो, उसका वाद आदि कुछ भी हो, इस से परिस्थिति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि हम मानसिक और सामाजिक स्तर पर ही बिगड़े हुए हैं । बाकी इस नाटक में आए पात्र आदि सब कल्पित हैं । इस उद्देश्य से रचे गये हैं कि हम स्वयं को पहचान सकें । अगर रोग का पता न चले तो उस का उपचार कैसे हो ?

कलाकोष की ओर से यह नाटक हाल ही में श्री बी. एम. सूरी के निर्देशन में फाईन आर्ट्स थियेटर नई दिल्ली में जिस सफलता से प्रदर्शित हुआ उस से आशा बंधती है कि यह और भी कई स्थानों पर खेला जा सकेगा । मंच के माध्यम से लोक चेतना को बढ़ने का और अधिक अवसर मिल सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

जगदीश सिंह वोहरा

जुलाई

पहला अंक

मंच का पर्दा अभी गिरी अवस्था में होता है, जब दर्शकों में से कुछ आवाजें, "इन्कलाब जिन्दाबाद" "समाजवाद; ला के रहें गे" "भारत माता की, जय हो।" इत्यादि की आती हैं। कोई छः एक व्यक्ति इन नारों के साथ मंच पर आ जाते हैं।

"ठहरो भाइयो ! ठहरो" उन में से एक श्वेत दाढ़ी-मूंछों वाला देखने को समृद्ध व्यक्ति उन्हें नीचे बैठाता हुआ कहता है। "ठहरो—वह देखो नेता जी आ रहे हैं। हमारे नेता रामउपकार जी। वही लगते हैं।" थोड़ी खामोशी होती है।

इतने में अति सादे लिबास निश्चल और दयानतदार से लगने वाले एक व्यक्ति दर्शकों में से पधारते हैं, जिनके गले में वे छः के छः व्यक्ति आतुरता से हार पहना देते हैं,। "अब बैठ जाओ। सभी बैठ जाओ। अपने प्यारे नेता का भाषण सुनने को तैयार हो जाओ। व्याकुलता को छोड़ कर सब बैठ जाओ।" सभी बैठ जाते हैं, पर वह बुजुर्ग, रामउपकार के पास खड़ा रह कर मुसकराता हुआ बोलने लगता हैं। "भाईयो—देश को राम-उपकार जैसा धर्मात्मा नेता नहीं मिल सकता। आज की संकट कालीन अवस्था में मैंने इन्हें मना लिया है कि यह इलैक्शन में खड़े हों जाएं। यूं यह मानते नहीं थे। समाज की अधोगति से निराश होकर वनों में जाने की सोचते थे। कहते थे सन्यास धारण करने का विचार है। क्योंकि देश की मौजूदा अवस्था देख कर अत्यंत दुखी थे। पर संयोग की बात है भाइयो, मैंने इन्हें कहा कि भागने से तो अच्छा है यह देश की सेवा करें। इलैकशन में खड़े हो जाएं। हम तन मन धन से इनकी सहायता करेंगे और इन्हें इलैक्शन में जिताएं गे। फिर जैसा चाहें करें। समाज सुधार भी करें और देश सेवा भी—साथियो—इन्हों ने अत्यंत विनम्रता से मेरी विनती मान ली। अब सुनिये इन्हीं के मनोहर वचन हां हां, सुनिये"।

"भाईयो, मेरे मित्रो और साथी जनों, मैं ने अभी किया ही क्या है जिस के आधार पर मैं कुछ कहूँ ! हमें परखने की कसौटी हमारे कर्म होते हैं, विचार कदाचित् नहीं होते। भाषण, केवल बकवास होते हैं। जैसा कि आप जानने के आदी हो चुके हो। पर मैं—मैं झूठे वचनों में विश्वास नहीं रखता—मैं काम और केवल काम में विश्वास रखता हूँ। जो कोई नहीं कर सका वह मैं करूँगा। देश में सच्ची क्रांति ला के दिखाऊँगा सच्चा समाजवाद ! यह सारी व्यवस्था ही बदल दूँगा। देश में सच्चा लोकतंत्र आ जाएगा। पर यह तभी हो सकता है अगर यह सब करने का मुझे अवसर दिया जाए। उस से पहले तो कोरी बातें ही होंगी। जिन में पड़ना मैं मूर्खता समझूँगा।" यह कह कर वह बड़ी निःस्वार्थता से आगे बढ़ जाते हैं। अन्य सभी उनसे प्रभावित होकर नारे लगाने लगते हैं।

एक प्रतिद्वंदी प्रकार का अन्य उम्मीदवार वहां पर आता है। रामउपकार की बड़ी फूहड़ भाषा में निंदा करता है जिस पर दर्शकों में हंसी फैलती रहती है और फिर वह भी वहां से हट जाता है। इसके पश्चात मंच का पर्दा उठता है।

किसी भी राजधानी की एक कोठी के लौंज का दृश्य सामने आता है। दो ओर के दरवाजे भीतर की ओर खुलते हैं और एक बाहर की ओर ! फर्श को ढकते एक बड़े कीमती कालीन पर सोफ़े और अन्य फरनीचर की बस्तुएँ सुविधा अथवा आवश्यताअनुसार रखी हुई हैं। सभी फ़रनीचर की बस्तुएँ बहुत कीमती हैं और घर वालों की अत्यन्त समृद्धी दर्शाती हैं।

राम उपकार किसी दैनिक पत्र को देखते हुए भीतर से आते हैं। पहनावा खादी का स्वच्छ और साफ है। चेहरे पर सफलता और सन्तोष की चमक है चाहे अवस्था अब बुढ़ापे की है। वह सोफे पर बैठ कर मेज पर पड़ी अन्य पत्रिकाओं को जल्दी-जल्दी देखने लगते हैं।

प्रबोध कुमार एक चालीस वर्षीय उनका निजी सहायक, आता है। उसने एक ट्रे में कुछ पत्र और कुछ तारें आदि रखी हुई हैं। उन्हें रामउपकार के सामने रख कर स्वयं खड़ा रहता है।

रामउपकार—(तारें देखता हुआ) हां, कहो प्रबोध ! हमारा आज का कार्यक्रम क्या निश्चित किया है ?

प्रवोध—(नीचे बिखरी पत्रिकाओं को समेटते हुए) सर—इसका निर्णय तो आप को ही करना है ।

उपकार—तुम जानते हो हमारा कार्यक्रम कोई निश्चित नहीं होता । हां—देखें तो—(कुछ सोचने पर) पर हाँ—आज मंत्री परिषद की बैठक है । फिर लंच पर भी जाना है । (प्रबोध लिखने लगता है) लंच सेठ गेंदालाल की मैनशन में है—कुछ विशेष लोगों के साथ चाय भी रखी गयी है । एक वैरायटी प्रोग्राम का उद्घाटन······रात को है······कि······?

प्रवोध—सर, शाम साढ़े छः वजे ।

उपकार—हां, यही ! यही ! (सोचकर) हमें मन्त्री परिषद की बैठक में इस हड़ताल की धमकी का भी उल्लेख करना है । मेरा विचार है कोई अन्य आवश्यक समस्या नहीं रही जो—

प्रबोध—सर—इन भूखहड़तालियों की भी—

उपकार—इस वात की आवश्यकता नहीं पड़ती । देख प्रबोध ! जब तक कोई आदमी मरने के करीब न हो जाए—या मर न जाए हमारी नीति ऐसे केस पर गौर करने की नहीं होती । नहीं तो हर कोई भूख हड़ताल करने लगे । पर सूचना क्या है ?

प्रवोध—सुना है उनका मोरेल टूट रहा है । अगर एक वार आप मिल सकें तो शायद इतने से ही—(व्यंग्यात्मक हंसी हंसता है)

उपकार—(खीझ कर)—पर यह स्थिति ही कहां आयी है ? तुम समझते क्यों नहीं ? मुझे तुम्हारी बुद्धि पर कभी-कभी संदेह होने लगता है प्रबोध ।

प्रवोध—(परेशान सा) जी हां—कुछ मुझसे ही भूल हो गई थी लेकिन मुझे कुछ चिंता सी थी, इसी लिए कहा था । सुना है वे आज कोई प्रदर्शन करने वाले हैं । प्रदर्शन ! सर—

उपकार—तो क्या है ? आई० जी० को इसकी सूचना दे दो । इस

पर पुलिस सावधान रहेगी । प्रदर्शन कानून का मामला है । अगर कोई कानून तोड़ेगा तो उसे कानून सज़ा देगा । इस पर हम माथापच्ची क्यों करें ? हैं न ?

प्रबोध—जी हां—बात तो साधारण सी लगती है ! (झिझकते हुए) सर—पर एक सूचना और भी है ।

उपकार—क्या है ?

प्रबोध—वे अर्थी बना कर आपकी कोठी के सामने जलाने का इरादा रखते हैं ।

उपकार—(हैरानी से) अर्थी—जलाने का इरादा ! किस की अर्थी ?

प्रबोध—जी······जी······जी······अर्थी जी । आपकी अर्थी जलाने······। (सकुचाकर) नहीं-नहीं ! कागजों की साहब ! कागजों (कुछ क्षणों की मौनता) शरारती लोग पत्थर भी इकट्ठे कर रहे हैं ।

उपकार—(क्रोधित होकर) ठीक है। चीफ सैक्रेटरी का फोन मिलाओ । मैं फोन पर कहे देता हूँ । हथियारबंद पुलिस का पहरा इस इलाके की सीमाओं पर लगाया जाये । और शरारतपसन्दों पर गोली चलाने तक की इजाजत हो ।

प्रबोध—जी हां—आप ने ठीक कहा जी ! पर-पर एक निवेदन है साहब ! लगता है कहीं छोटा मुंह बड़ी बात न हो—पर-पर······!

उपकार—(खीझ से) कोई नहीं—कोई नहीं । बात तो करो भाई !

प्रबोध—अगर गोली चली तो कहीं ये अखबार वाले आंदोलन को और न भड़का दें । आप के विरोधी भी इस घटना का लाभ उठा सकते हैं ।

उपकार—हां हां । यह तो मैं भी समझता हूँ । मैं भी जानता हूँ ! भड़काएंगे······कई कूदेंगे (उठ कर घूमते हुए) हमें इस पर सोचना पड़ेगा ।

प्रबोध—आप के कार्यक्रम में अगर यह बात सम्मिलित हो कि आप एक वक्तव्य आज देंगे । सरकार की अपनी लाचारी और हड़तालियों की जिद पर, तो बहुत अच्छा हो । प्रदर्शन से पहले ही साहब !

उपकार—(असन्तोष से) पर वह अवसर कहां आया है ?

तुम समझते क्यों नहीं ! यह प्रदर्शन कब किया जाएगा ?

प्रबोध—सर—शाम छ :बजे के करीब !

उपकार—तो हम यहां होंगे ही नहीं ! इस टंटे का इलाज भी यही है। रात नौ बजे लौटेंगे। तब तक कानून के रखवाले और कानून के दुश्मन एक दूसरे से निपट लेंगे। है न ? (आत्म विश्वास भरी हंसी)।

प्रबोध (हंसता हुआ) ठीक है। ठीक है जी ! (दोनो की एक साथ हंसी) तो बाकी दिन का कार्यक्रम ?

उपकार—हम ज्यादा समय सेठ गेंदालाल की मैनशन में गुजारेंगे। वहां जाने के लिये उन की कार आ जानी चाहिये। एअरकंडीशनड परदों वाली कार हो ! हम किसी सड़क पर अपनी कार से निकल कर उस में चले जाएंगे। इस तरह किसी को गलत बात समझने का अवसर न मिले।

प्रबोध—(मुस्कराकर) जी हां—सेठ जी भी यही चाहते हैं। फोन पर वे यही कह रहे थे।

उपकार—तो ठीक है। मैं बाकी किसी दूसरे से आज मिल नहीं पाऊँगा—हां—कोई विशेष व्यक्ति हो तो बात और है। हमारे पास नष्ट करने को समय नहीं है। लोग तो यूं ही अपने मनोरथों के लिये आते रहते हैं।

प्रबोध—जी हां। कह दूंगा आप बाहर गये हुए हैं।

(दयावंती, एक अधेड़ आयु की स्त्री प्रवेश करती है। शरीर से भारी, वह देखने में साधारण महिला है पर अच्छे समय ने उसके तेवर असाधारण बना रखे हैं।)

दयावंती—लो जी—मैं एक बात कहने आई हूं। पर पहले यह बताओ आज आपको कहीं जाना तो नहीं है। आज मैं आपकी एक नहीं सुनूंगी।

प्रबोध—हां हां बीबी जी। एक न सुनियेगा (हंसता हुआ चला जाता है)।

उपकार—जाना तो होता ही है। पर बात क्या है ?

दयावंती—राजरानी जिद करती है जी। कहती है मुझे सिनेमा

दिखाने नहीं ले जाता कोई । उसकी सहेलियां हर दूसरे दिन जो देखने चली जाती हैं । पर उनके साथ आप जाने नहीं देते !

उपकार— हां मैं इस को उचित नहीं समझता इस लिये । तुम्हें भी चाहिए कि कुछ भला बुरा समझा करो ! अपनी हैसियत देखो । अपना दायित्व समझो । है कि नहीं यह समझने की बातें ?

दयावंती—(गर्व भरी अनुभूति से) जी वह तो मैं भी समझती हूँ । लेकिन इस हैसियत को लेकर ही तो वह कहती है । यह भी मानना पड़ता है, जब हैसियत है तो कमी काहे की है ! उसकी देखने-जोखने की इच्छाएँ ही क्यों दबी रहें ?

उपकार—(हंस कर) हां हां—लगता हैं समझदारी में मैं ही पिछड़ गया हूँ । तुम सब तो आगे बढ़ गये ।

दयावंती—(बैठ कर) और सुनो जी । आज हमने मीनाक्षी के घर जाने का भी फैसला किया है । उस की मां रंजना बार-बार बुलाती हैं । बार-बार हमारी ऊँची स्थिति की आड़ में बातें बनाने लगती हैं ।

उपकार—भला कैसी बातें बनाती है ?

दयावंती—(फूल कर) कहती थी "तुम किसी राजे महाराजे से कम कहां हो ! मंत्री लोग हमारे स्वामी जो हैं । देश के नए शासक हैं । तभी तो वे हम जैसे कर्मचारियों के घरों में आना पसंद नही करते ।" अब बताओ मैं भी क्या कहूँ ? वह आप ही सैक्टरानी ठहरी । न कम अमीर है, न कम हैसियत की लगती है । बल्कि बातों में बड़ी चंट है । सुंदर भी हुई । मुझे तो जवाब नहीं सूझते । शायद मन में हंसती हो !

उपकार—यह मूर्खता कोई क्यों करे ? कोई मज़ाक है ? हज़ारों लोगों के चुने हम 'जन-अधिकारी' हैं । जनता के नेता हैं, ।

दयावंती—जी हां—इसी लिए तो आप इतने बड़े माने जाते हो जी !

उपकार—सैक्टरी का क्या है ? दो चार अफसर इन्हें चुन चुना लेते हैं । इन की प्रमोशन हमारे कहे सुने पर ही तो होती है ! लेकिन छोड़ो—इन बेकार की बातों में क्यों पड़ती हो ?

दयावंती—(गर्व से) जी हां—तभी तो ऐसी बातों पर मैं ध्यान नहीं देती !

उपकार—पर बिगाड़ने की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह रानी का रिश्ता अपने लड़के केवल के लिए चाहते हैं। मुझे यह संकेत मिला है। सोचता हूँ, बुरा भी क्या है !

दयावंती—(खुशी में उठ कर) ओ हो हो—मैं तो भगवान् का लाख लाख धन्यवाद करूँ ! लड़का तो बस चांद है जी, चांद ! ऐसी ही हमारी बेटी है। पासे का सोना है जी सोना !

उपकार—(मुस्करा कर) मुझे डर था तुम इस बात पर जरुर उछलने लगोगी।

दयावंती--(उत्तेजना से) क्यों ! मैं तो उछलूंगी। कूदूंगी। नाचूंगी। (हंसती हुई) ही ही ही—लड़का तो चांद जितना सुन्दर है जी !

उपकार—चलो मान लिया वह चांद है। चांद का चमकदार टुकड़ा है ! पर बात तो हो ले भागवान ! (हंसते हैं) ठंड सी लगती है अभी से कूलर चला लेती हो। आखिर हर कमरे में क्यों ?

दयावंती—इस बार गर्मी जल्दी पड़ रही है जी ! घर ठंडा रखने के लिए चलाए रखते हैं। घर अगर ठंडा न हो तो हमारी हैसियत का पता कैसे लगे ?

उपकार—यह हैसियत तुम लोगों के दिमागों पर कुछ ज्यादा ही सवार लगती है !

दयावंती—जी हैसीयत है तभी तो ! इसी लिए बिजली के हीटरों पर खाना पकाते हैं। नहीं तो कोयले लकड़ी का धुआँ उठता रहे। बिजली की मशीन से कपड़े धुलते हैं। धोबियों पर कौन भरोसा करे ! पर आप क्या जानें घर कैसे चलता है जी !

उपकार—हां—मैं कैसे जान सकता हूँ ! वास्तव में मंत्रीपद पर तो तुम्हीं लोग पहुँचे हो ! (हंसते हैं)।

दयावंती—आप प्रगति की बात जो कहते रहते हो। अगर अपने घर

प्रगति न आई तो देश में खाक आएगी ?

उपकार—पर रोना तो इस प्रगति के बावरेपन पर आता है। ऐसी लगती है जैसे चलती फिरती फिसलती और गिरती हो। (हंस कर) हां हां हां ! अच्छा, बात यह है, ऐसी प्रगति की गति को थोड़ा धीमा कर दो। बिजली की खपत का मामला है। दूसरे मंत्रियों के मुकाबले में मेरी आलोचना कम होनी चाहिए।

दयावंती—जी आलोचना भला कोई क्यों करे ? हम कहां किसी के घर का खाते हैं ! भगवान् की कृपा और अपनी बुद्धि के बल पर इस पद पर पहुँचे हैं

उपकार—हां—जरुर पहुँचे हैं। जिसे नासमझी से लोग खो भी देते हैं। पर साथ ही हमें वे दिन भूलने नहीं चाहिये जब पांच रुपयों का बिल भी बड़ा अधिक लगता था—फिर आज तीन चार सौ तक क्यों हो जाये ?

दयावंती—जी बेकार में मुर्दे नहीं खोदा करते। जो वक्त गुज़रा शुक्र है गुजर गया। अगर नौकर अपने घरों में कोयला जलाएं तो वेतन बढ़ाने को कहें। इस लिए सोचती हूँ, अपने लिए बिजली के हीटरों पर खाने पकाते हैं तो पकाएँ। हमारा क्या जाता है। फिर भी कमी करके देखूंगी।

(राजरानी जो देखने में सुन्दर, सुशील और आधुनिक युवती है प्रवेश करती है।)

उपकार—कर देखूगीं नहीं बल्कि करनी ही पड़ेगी ! अगर कार ले जानी है तो जाते ही वापस भेज देना। (कुछ फ़ाईलें उठाए प्रबोध आता है)

प्रबोध—सर फ़ाईलें यहीं देखें गे ? बड़ी जरुरी हैं जी !

उपकार—चल वहीं देखता हूँ। (दोनों का प्रस्थान)

रानी—(दयावंती को बाहों में बाँध कर)—ओह माता जी ! क्या ले चलोगी न ? मैंने सब सुन लिया है।

दयावंती—जरुर चली चलना ! यह कभी न समझना कि हम तुम्हारी इच्छाएें पूरी नहीं करते !

रानी—(खुशी से) ओह !—तो मैनेजर को भी फोन कर दूं ? दो

सीटें रिजर्व कर दे ! बताओ—दो करे कि तीन ?

दयावंती—ठहर जा ! पहले मीनाक्षी को फोन पर कहो हम लोग आ रहे हैं। कहीं क्लब आदि में न चली जाएं । और सुन, दूसरा फोन सुपर बाजार के मैनेजर को कर देना। कहना, हम वहां आने वाली हैं। ताकि नौकरों को चौकस कर दें । और सुन, तीसरा फोन 'बनारसी साड़ी भण्डार' वाले को भी कर देना। कह देना हम कुछ साड़िया खरीदने आ रही हैं ताकि वे भी समझदारी से काम लें। दाम भी सोच समझ से लगा सकें ।

रानी—(शरारत से) और माडर्न ज्यूलर्ज़ को भी फोन कर दूँ; अगर नये नमूने के आभूषण बनवाने हों !

दयावंती—अरी नहीं—अभी पिछले महीने जो बनवाए हैं । भगवान की दया से किलो सोने के आभूषण तुलवा लिये । अरे हाँ—एक फोन किरण सिनेमा के मैनेजर को भी करके कह देना कि—बकसा रिजर्व कर दे । बकसा ही—

रानी—ओह ! बकसा—(हंसती हुई) हो हो हो । बकसा—ही रिजर्व कर दे । सच माता जी तुम बड़ी ही भोली हो । तुम्हारी बाते ऐसे मजा देती है जैसे करारी मसाले की चाट हों ।

(फोन करने लगती है)

दयावंती—देख—बात जरा ढंग से करना । कहना, माता जी को बड़ी मुश्किल से मनाया है । वह कई तरह के राजसी झमेलों से यूँ तो नहीं निकल सकतीं । पर मैंने जिद की है इसलिए मान गयीं हैं ।

रानी—(मुस्करा कर) अगर पूछें कौन से राजसी झमेले हैं ? तो क्या कहूँ ?

दयावंती—यह नहीं पूछेंगी ।

रानी—क्यों नहीं जी । ऐसी बात तो जरुर ही पूछने लगती हैं ।

दयावंती—कहना—झमेले जो तुम नहीं समझ सकतीं । (एक दम खिल कर) हां हां रानी । यही तो कहना ठीक रहेगा । क्या पता जैसे तू मेरी बातों पर हंसती है—वे भी हंसी में लेती हों । लोग अपनी हैसियत कम

देखते हैं। अपने से बड़ों की हँसी उड़ाने में रहते हैं।

रानी--पर वह कोई और बात भी तो पकड़ सकती हैं। तुम्हारी बातें ही पकड़ी जा सकें तो!

दयावंती--अच्छा पहले तो तू ही कम नहीं मेरी बात पकड़ने को।

रानी--(फोन पर) हैलो हैलो--कौन?--मैं राजरानी बोल रही हूँ जी! क्या--क्या नहीं जानते हो?--ओह--जी! मैं रामउपकार जी की लड़की हूँ--जी हाँ--हां धन्यवाद जो जान गये आप!--अच्छा--ओह--आप मीनाक्षी के भाई केवल कृष्ण बोल रहे हो!? ओ--तभी!--मेरी आवाज़ भी पहचानते थे।!--जान बूझकर अनजान बनते थे! ओ--अच्छा इस का बदला मैं मीना से ले लूँगी!--जी हां खूब लूँगी!--क्योंकि उसी के कारण!--ही ही ही! जी हां--अच्छा अब तो मीना को बुलाओगे? हां--हां--

(बलवंत एक २५--२६ वर्ष का युवक प्रवेश करता है। पोशाक सादी किन्तु आधुनिक। हाव भाव में लापरवाही सी झलकती है। राजरानी उसे देखते ही मुस्कराती है और टेलीफोन उठा कर बात करती करती दूसरे कमरे में चली जाती है)

बलवंत--मौसी जी--पांव पड़ता हूँ!

दयावंती--चिरंजीव हो--बलवंत! क्या अभी आया है?

बलवंत--बस स्टेशन से सीधा यहीं आ रहा हूँ! (मुस्करा कर) वैसे अभी भूख-भाख नहीं लगी। फौरन चिंता करने की बात कोई नहीं। (थैला साथ रख कर सोफे पर आराम से बैठ जाता है)

दयावंती--वापस कब जाएगा रे?

बलवंत--मौसी कभी तो ऐसे भी कहो--(बारीक आवाज़ से) 'बलवंत-तूने बहुत अच्छा किया जो आ गया है! बस तुझे याद करते रहते हैं। यह घर अपना घर ही समझ, बेटे! तेरे यहां होने से बड़ी रौनक रहती हैं। हम जल्दी नहीं जाने दें गे। (वास्तविक आवाज़ से) 'और कुछ ऐसी मीठी स्नेह भरी बातें मौसी जी! जिन्हें सुनकर ऐसे लगे जैसे सारी धरती हरिया-

से भर गई हो। इस सूखे मौसम में भी ! इस बेरोज़गारी के समय में भी ? (हंसता है)

दयावंती—इस तरह तुझे और भी खराब कर डालूं न ! क्या मैं जानती नहीं तेरे इस बाहर रहने पर वे कितनी चिन्ता करते हैं ? आगे कोई कम आवारा है तू ?

बलवंत—हां ! पर हो सकता है उन्हों ने मुझे यहां रहने को ही भेजा हो !

दयावंती—माता पिता ऐसा नहीं कर सकते ! बेटा दूर हो तो दिल पर क्या गुज़रती है। यह वही जानते हैं।

बलवंत—यह आप मन से नहीं कहतीं। वैसे सच्चाई तो यह है कि अब आप हमें इस काबिल नहीं समझते कि आप के यहाँ आएं। क्योंकि आप अब शासकों में से हो। वक्त के राजे हो। हम गरीब हैं इस लिए मिलते अच्छे नहीं लगते।

दयावंती—राजे कैसे बेटा ! जनता के सेवक हैं ! वह कहते हैं राजे कहना तो गाली देने के बराबर है आज कल। (रोष से भरकर) और ! बलवंत—जिन्हें ईर्ष्या है वे तो राजे कह लें पर तुम क्यों कहो ? मैं हैरान हूँ ! इनके एहसान कोई कैसे भूल जाता है। सम्बन्धी तो—

बलवंत—(हंसता हुआ) हा हां हां—एहसान तो यह है कि मंत्री बन कर राजों की बिरादरी में जा मिले। गरीब सम्बन्धियों से मिलना भी पसंद न रहा।

दयावंती—यह तो बेटा तू गलत सोचता है—बिल्कुल गलत !

बलवंत—पर गरीब सम्बन्धियों को यह कर्त्तव्य भी पूरा करना चाहिये कि अगर आप रात को दिन कहो तो उन्हें दिन ही कहना चाहिये ! पर सवाल यह है मौसी जी—चुटकी भर सम्बन्धियों के ऐसे कहने से क्या रात दिन माना जा सकता है ?

दयावंती—अरे—यह कैसी बातें करने लगा है तू ! हम कहां किसी को कहते हैं कि कोई हमारे लिए रात को दिन कहने लगे।

बलवन्त—(हंस कर) हा हा हा ! तो आप को राजे महाराजे कहाने से परहेज़ कैसा ? देखो मौसी जी—कभी राजे महाराजे जागीरें देते थे। जिन्हें मिल जातीं; वे माला-माल हो जाते थे। पर आजकल लाइसेन्सों ठेकों और परमिटों की सरकार है।

दयावंती—आजकल ख़ाक है देने को। तुझे कोई नौकरी न दिला देते अगर कुछ देने को होता ?

बलवन्त—ठेकों, आर्डरों और पदवियों रूपी जागीरें ! जिसे दे दें, वह माला-माल। जिसे न मिले वह मिट्टी छानता है। यह अगर राजों महाराजों की बातें नहीं तो क्या हैं ?

दयावन्ती—तुम बड़ी भूल करते हो बेटा। अगर तुम्हारे मन में कोई शक है तो बेशक उन्हें बता। मैं तो कहती ही रहती हूँ कि तेरे लिये भी कुछ करें पर कोई राह ही नहीं निकलती। अरी—राज रानी ?

रानी—(फोन पकड़े आती हुई) हां—बताओ माता जी ?

दयावन्ती—क्या लम्बी-लम्बी बातें कर रही हो ? क्या कहते हैं ?

रानी—बात तो उल्टी हो गयी। वे तो पहले ही यहां आने का तैयार थीं।

दयावन्ती—अच्छा कोई नहीं ! अगर तैयार थीं तो कौन रोकता है ! जब चाहें आएं। कहो हम भी यही चाहते हैं। बस जल्दी आ जाएं !

रानी—फिर पिक्चर का क्या बनेगा ?

दयावन्ती—शाम को बलवन्त के साथ दिखा लाऊँगी। यह बेचारा भी दिल बहला लेगा।

बलवन्त—(मुस्करा कर) हां—मैं बेचारा भी दिल बहलाऊँगा।

रानी—मैं मीना को भी आने को कहती हूँ। (फोन पर) मीना ! क्या ईवनिंग शो चलोगी ? हां—हां—वही—नानक नाम जहाज़ है। अच्छा—फिर तैयारी करती हूँ। भाई जल्दी आ जाना।

(हँसती हुई फोन रख देती है)

दयावन्ती—पता नहीं खाने को क्या तैयार हुआ है। वे खाने के समय

Promila Pathak as Raj Rani and B. M. Suri as Balwant

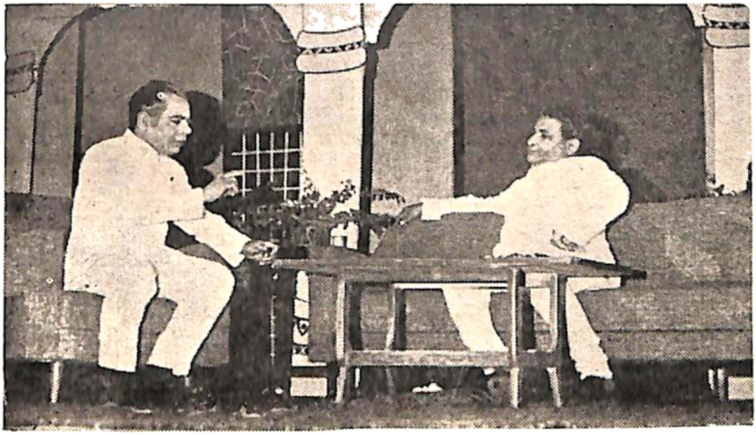

O.P. Sharma as Maharaj Krishan & M.S. Sethi as Ramupkar

L. to R. Perminder Vohra, Promila Pathak, Vinay Bhatia, and Santosh Lata,
as Meenakshi, Raj Rani, Dayawanti and Ranjna

ही आती हैं। नौकरों को कहती हूँ। सब्जी ध्यान से बनायें। (प्रस्थान)

बलवंत—हैलो रानी ! यह कैसी खिचड़ी पका रही हो ?

रानी—खिचड़ी तो नहीं—पुलाव पका रही हूँ। क्या खाओगे ?

(हंसती हुई उसके सामने आ बैठती है)

बलवंत—अगर खिलाओगी तो जरुर खाउँगा ! इस देशी समाजवाद के युग में बस यही समझ, कि मैं हर चीज़ खाने और बरतने को तैयार रहता हूँ।

रानी—पर चीज़ों तक तुम्हारा हाथ नहीं पहुंचता। ही ही ही (हंसी)

बलवंत—यह भी ठीक है।

रानी—एक बात बताऊँ ? आज मेरी सहेली मीनाक्षी आ रही है। बड़ी सुन्दर है मीनाक्षी ।

बलवंत—तुझ से भी बढ़ कर है ?

रानी—(शरमा कर) चल हट—पर एक बात है जो तुझे शायद पसंद न आए !

बलवंत—(मुस्करा कर) मैं हर बात को पसंद कर लेता हूँ। यूं तो बन्धन-रहित हूँ ।

रानी—वह तुझ जैसे लेखकों से घृणा करती है। देख—बुरा न मना लेना। अगर यूँ ही छेड़छाड़ करने लगे तो।

बलवंत—मुझे तो यह भी पसंद है।

रानी—बिल्कुल झूठ ! भला कैसे ?

बलवंत—बात यह है रानी, कि जिन्दगी के इर्द-गिर्द कितनी ही गंदगी फैली रहती है ! घृणा भी तो गंदगी है न ? फिर कौन कह सकता है कि गंदगी बेकार होती है ? पर वह मुझ जैसे लेखक से घृणा करके परेशान भी क्यों हो ? जब ऐसे लेखक की लेखनी उस की व्यक्तिगत सम्पति हो। किस के यहाँ समय है उस को पढ़ने का या परखने का ? कम से कम किसी प्रकाशक के यहाँ तो है ही नहीं ?

रानी—(हंस कर) ही ही ही ! तभी तो यह हंसने की बात है।

तुम्हें कोई छापता जो नहीं है। क्या यह भी पसंद है तुझे ?

वलवंत—अच्छा—तो छेड़ना शुरु कर दिया ? तू भी छेड़ ले रानी !

रानी—मैं भला क्यों छेड़ने लगी ? मैं तो चाहती हूँ तुम भी किसी तरह आगे वढ़ो।

वलवंत—(उदासी से) मेरे सभी रास्ते रुके हों तो मैं करूँ भी क्या रानी ! खैर—अगर असफलता का वदला नफ़रत है तो मुझे इस नफ़रत से दो चार होने में क्या एतराज़ है ! आखिर असफ़ल मनुष्य भी जीने का अधिकार नहीं छोड़ सकता।

रानी—हां—हां—तुम अधिकार ही अधिकार कहते रहो। जवकि लोग विना अधिकारों के ही लूट मचा दें।

वलवंत—जो वात वस में नहीं उसके लिए व्यर्थ परेशानी क्यों उठाऊँ ? ऐसे लोग तो खिलाड़ी ही इन वातों के होते हैं। जवकि मैं—

रानी—पर वलवंत ! तुम्हारी उस विद्यार्थियों वाली नेतागिरी का क्या वना ?

वलवंत—(हंस कर) हा हा हा ! तुम क्या समझती हो ? क्या कभी परम्परावादी और आसान जिन्दगी पसंद करने वाले मुश्किल राहें अपना सकते हैं ? जो श्रम और नियंत्रण दोनों में कोरे हों ?

रानी—(प्रभावित सी) वैसे तुम्हारे विचार आकर्षक होते हैं वलवंत ! कई वार सोचती हूँ ! तुम्हारे मुट्ठी भर साथियों के साथ मैं भी मिल जाऊँ ! मुझे देखकर शायद और भी लड़के लड़कियां आ मिलें। और हम एक स्वस्थ आन्दोलन चला सकें। समाज में कोई अच्छा परिवर्तन ही आ जाए ! कौन जाने ऐसे में............।

वलवंत—(मुस्करा कर) तुम्हारे वलिदान का मेरे जनून को सहारा न भी मिले तो क्या है ? तुम्हारे मिलने से भी स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव शायद ही पड़े ! मैं वताऊँ यह समाज कैसा है ? (हंसकर) एक वहुत पुराने तालाव की तरह है। इस के सदियों से जमा वदवू भरे गंदे पानी में चाहे कितनी ही ताजे जल की वाल्टियाँ डाल दें, इसकी ख़ासियत नहीं वदल सकती !

रानी—तुम इतने ही निराशावादी क्यों हो रहे हो ?

बलवंत—क्या निराशावादी अस्वाभाविक होते हैं ?

रानी—मैं क्या जानूँ !

(रामउपकार हाथों में एक पत्रिका लिये उसे देखते हुये प्रवेश करते हैं)

बलवंत—पांव पड़ता हूँ मौसा जी ! (रानी का प्रस्थान)

उपकार—जीते रहो—जीते । (चौंक कर) कौन !—अरे तुम ! तुम कब आए लौंडे ? अरे आजकल के औद्योगिक युग में तुझे ऐसे आने का फ़ालतू वक़्त कैसे मिला ?

बलवंत—क्या एक बेकार मनुष्य के लिए भी किसी औद्योगिक युग का कोई अर्थ हो सकता है ! मैं समझता हूँ समय के बोझ से ही वह दब जाता है मौसा जी !

उपकार—क्या दबना है ? फिर तू तो नेता भी है। नेता होकर बेकार कैसे कहला सकता है ?

बलवंत— (मुस्करा कर) हां—नेता हूँ वीरान राहों का जहां उजाड़ हो—सूनापन हो। कोई बिल्कुल अकेला भी हो ! (उनसे पत्रिका लेकर) ओह ! पूरे पृष्ठ पर आपका ही चित्र छपा है। लगता है इन्हों ने आपकी बड़ी सेवा की है। लेकिन आज कल—आज कल दोस्त दुश्मन का अन्तर नहीं रहा मौसा जी। इन की चापलूसी से जरुर बचना चाहिए ! (हंस कर) हा हा हा ! बड़े होशियार होते हैं यह लोग।

उपकार—अरे नादान ! ऐसी मूर्खता किस लिए ? मेरी बढ़ाई में इतने कालम क्यों भरें ?

बलवंत—कालम भरने से उनका क्या गया ? यह तो यूँ भी भरने होते हैं। जानते हैं ? आज का बुद्धिजीवी क्यों बदनाम है ? क्योंकि अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए वह कुछ भी कर लेता है; जिस का कोई महत्त्व नहीं उस का हो जाता है। जिस का महत्त्व है उसका नाम भी नहीं होता। विश्व-विद्यालय का अनुशासन क्यों ख़त्म हुआ है । इस के पीछे उन की यही प्रवृत्तियाँ हैं। आज का यह वर्ग क्यों प्रेरित नहीं करता ?

उपकार—(बैठ कर) खैर बरखुरदार—अभी तुम्हारा अनुभव ही क्या है !

बलवंत—अजी जाने दीजिए जी । अनुभवी क्या हैं ! वे छोटे मोटे कोनों के मोहताज होते हैं । पर मेरी दृष्टि ही तेज़ है । तेज़ दृष्टि फ़्लैशलाईट की तरह हज़ारों कोनों की वास्तविकताएं पलों में सामने ला देती है ।

उपकार—(हंसता हुआ) हा हा हा ! नयी पीढ़ी पुरानी को ऐसे समझती है—

बलवंत—(मुस्करा कर) जैसे पुरानी पीढ़ी के संस्कार बैल गाड़ी के चक्के से जकड़े हों ।

उपकार—(उत्तेजित सा) पर जरुरी नहीं जो नई पीढ़ी सोचती हो वही ठीक हो ।

बलवंत—नई पीढ़ी नहीं मौसा जी । नई चेतना की कहो । जो केवल संघर्षशील जीवन की उपज हो । विश्वास या परम्परा की न हो । जब नई चेतना पुरानी विचारधारा की जगह ले लेती है तो प्रगति होने लगती है ।

उपकार—हम तो यूं भी प्रगति ला रहे हैं । (हंसते हैं)

बलवंत—आप की प्रगति चेतना-रहित है । जिस में कर्मशीलता नहीं आ सकी । इस लिए जब एक कदम बढ़ती है तो दो कदम फिसल जाती है । आज वक़्त संकेत दे रहा है कि नई चेतना की आवाज़ सुनी जाए ।

उपकार—अगर न सुनी जाए तो ? (हंसते हैं)

बलवंत—तो पुरानी व्यवस्था प्रगति को रोक कर खड़ी हो जायेगी । और एक दिन देश को ले मरेगी ।

उपकार—(हंसता हुआ) हा हा हा—क्या उसे आगे बढ़ाने की अक़्ल केवल तुझी में आ गई है ?

बलवंत—क्योंकि आप प्रगति को बैलगाड़ी के आसरे देते हो । पुरातनता के—व्यर्थ रीति रिवाजों के ! जबकि राकिटों से वह आसमान के सितारों को छू चुकी है । क्या अब भी हमारा संदेह नहीं दूर होना चाहिये ।
(महाराज कृष्ण, जो एक उच्च अधिकारी है, प्रवेश करता है । वह पहनावे

मिज़ाज और व्यक्तित्त्व, सभी से समृद्ध लगता है)

उपकार—(उत्तेजना से) आओ—आओ ! महाराज ! आप ठीक समय पर आए हो। यह तो खूब रहा !

महाराज—क्षमा करना। विना बताए आ गया हूँ। सचिवालय जाते हुए विचार आया—और यहीं पर गाड़ी रोक दी।

उपकार—(जो स्वभाववश खड़ा हो गया था, बैठता हुआ) आज आप आशा के अनुकूल निकले हो। नहीं तो मुझे निहत्था होना सा लगता था।

महाराज—देख लीजिए हम आप की इच्छा कैसे भांप लेते हैं ! हा हा हा (पसीना पोंछता हुआ) कुछ जरूरी सी बातें थीं। सोचा—इस से पहले कि सरकारी कारवाई शुरू करें आपको हालात की जानकारी करा दूं ! विभाग के सचिव के नाते—

उपकार—हां हां—यही तो मैं भी आशा करता हूँ। है क्या कोई नई बात ?

महारज—वही स्ट्राईक—लेबर की। स्टूडेन्ट्स की ! बदअमनी और लाकानूनी। लोगों में शोर—भड़कीले भाषण। हिंसा की धमकियां—तोड़ फोड़ की वारदातें !

बलवंत—श्रीमान जी—क्या इस सम्बन्ध में मैं भी कुछ कहूँ ?

महाराज—आपका परिचय ?

बलवंत—एक वर्ग के विद्यार्थियों के प्रतिनिधि के नाते इस स्थिति पर कुछ प्रकाश डाल सकता हूँ।

महाराज—हूँ ! और मजदूरों के बारे में ?

बलवंत—मैं उनकी स्थिति भी जानता हूँ, क्योंकि उन के संपर्क में रहता हूँ !

उपकार—वैसे सुनने में हर्ज क्या है ?

महाराज—बिल्कुल जरूरत नहीं। अगर हर किसी की सुनने लगो तो दिमाग जवाब दे जाएं।

उपकार—बलवंत—तुम अन्दर चले जाओ।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 90692

वलवंत—मैं चुप चाप वैठा रहूँगा मौसा जी । मैंने थोड़ा देखना है । सरकार की असली मशीन कैसे सोचती है । वह कैसे काम करती है ।

महाराज—नौजवान ! यह मेरा प्रोफ़ैशन है । सरकार के भेद न देने की मैंने सौगंध खाई हुई है । (वलवंत का प्रस्थान) यह कौन है ?

उपकार—दूर की साली का लड़का है ।—कोई खास नहीं । यूँ ही आना जाना है । मंत्रीमंडल में आने के कारण हम तो जा नहीं पाते । पर यह आने से रुकते नहीं हैं ।

महाराज—लोग किसी के रसूख का अनुचित लाभ उठा लेते हैं !

उपकार—पर इन बातों से विल्कुल कोरा है यह ।

महाराज—क्या करता है ?

उपकार—कुछ नहीं ! यूँ इन्जीनियरिंग ग्रेजूएट है । अब तो जैर्नलिज़म का कोर्स भी कर रहा है । पर तव भी वेकार है अभी तक ! मुझे कहता नहीं, मैं करता नही । नहीं तो कहीं क्लर्क या ड्राफ्टसमैन ही लगवा देता ।

महाराज—(आत्मसंतोष से) तभी कुछ फ्रसट्रेटेड है । कुछ क्रैंक भी लगता है ।

उपकार—हाँ कुछ सीधा है । थोड़ा सरफिरा भी ।

महाराज—अच्छा—इन स्ट्राईकों के वारे में हम ने फ़ैसला कर लिया है । इन्हें सख्ती से दवा देना है । ताकि दूसरे वर्ग सर ऊँचा न उठा सकें ।

उपकार—हां—सोचता हूं कैविनिट के आगे यह इशू रख दूं ।

महाराज—(पाईप से कश खींचता हुआ) नहीं—वात मामूली सी है । हर मामूली वात अगर कैविनिट में जाने लगे तो ऐडमिनिसट्रेशन के सम्बन्ध में प्रभाव ठीक नहीं रहते । हमने सैक्रेटेरीयट लैवल पर जो निर्णय किये हैं वे काफ़ी है । पुलिस को जरुरी आदेश दे दिये हैं ताकि स्थिति पर पूरा नियन्त्रण रह सके ।

उपकार—(कुछ सोच कर) क्या ठीक न हो अगर हड़तालियों से एक वार वात कर लें ?

महाराज—नहीं—नहीं ? यह गलती नहीं करनी है । वास्तव में मैं इस

वात से रोकने के लिए ही श्राया हूँ !

उपकार—लेकिन राजनीतिक स्थिति को देखूं तो सोचता हूँ—

महाराज—(उठ कर उसके पास बैठता हुश्रा) देखिये—बातचीत करने का अर्थ है उनके दृष्टिकोण को समझने को तैयार होना—दृष्टिकोण समझने का अर्थ है उन की मांगों को मान लेना। मानने का मतलब है कुछ दे देना। वल्कि वहुत कुछ देने को तैयार हो जाना। क्योंकि फिर मांगों की कई तरफ़ों से बाढ़ श्रा जाएगी। हर क्षेत्र की मांगों की! पर सरकार के यहाँ उन्हें मानने को न पैसे हैं न समय है। इस लिए ज़रूरी है कि हम हर दृष्टिकोण को समझने से इन्कार कर दें। हर हड़ताल को ज़ोर के साथ दवा दें—

उपकार—पर—कोई श्रौर भी ढंग होना चाहिये !

महाराज—(निश्चित मुद्रा से) श्रौर कोई ढंग नहीं हुश्रा करते।

उपकार—मुझे समझ नहीं श्राती हम करते क्या हैं? (उठ कर टहलता हुश्रा) वही पुराने किस्से हैं। वार वार वही सव कुछ। किसी को न्याय की जगह श्रन्याय दिये जाश्रो। उसे टालते जाश्रो। उसी तरह जैसे पराधीनता में होता था। क्या श्रौर कोई इलाज नहीं रहा ?

महाराज—फिर वही बात !—कौन सा इलाज ?

उपकार—कोई भी श्रौर इलाज जिस से वल प्रयोग करने की ज़रूरत न पड़े।—श्रौर शान्ति से सब निपट जाए !

महाराज—नहीं—ऐसे इलाज अभी सरकारी लैवल पर नहीं निकले हैं।

उपकार—(उत्तेजना से) नहीं निकले तो निकालो। सरकारी नियम विदेशियों के बनाये—नियम हैं। मैं पूछता हूँ हमने क्या बनाया ? श्रपने वातावरण के श्रनुसार भी कुछ बना है क्या ? उन नियमों को बदलो। क्यों नहीं वदलते ?

महाराज—शताब्दियों से श्रा रही बातें दिनों में कैसे बदलें ? कानून—क्या कानून कभी बदले हैं ?

उपकार—(बैठ कर) वे कानून जो चलते नहीं—वे कहां के कानून हैं ?

महाराज—ज़िन्दगी का यही दस्तूर है। कुछ नहीं हो सकता।

उपकार—पर मैं अपने राजनैतिक भविष्य को खतरे में क्यों डालूं? तुम्हारे ज़ोर से कुचलने का अर्थ है टकराव।—हड़तालियों का पुलिस से—उनके समर्थकों का सरकार से! जिसका अर्थ है सरकार और जनता की दुश्मनी! आखिर इस दुश्मनी का परिणाम क्या होगा?

महाराज—लोग बेहूदा मांगों के बदले हड़ताल नहीं करते। शान्ति अपने-आप बनी रहती है। सीधी सी बात है।

उपकार—(उसके पास बैठ कर) यह कैसे हो सकता है महाराज? हर बच्चे की हर नई स्थिति में एक नई मांग हो जाती है। जब उसे भूख सताती है तो वह शोर मचाने लगता है। वह रोता है, तब उसकी मां उसका गला तो नहीं दबा देती? सरकार भी जनता की मां है।

महाराज—(हँस कर) हजूर—आप भावना में बहने लगे हो। इसकी प्रतिक्रियायें कैसे भूल जाएं? यह राज्य-प्रबन्ध की बातें हैं, व्यक्तिगत भावनाओं की तो नहीं।

उपकार—(निरुत्तर सा) खैर यह अब राजनैतिक स्तर पर देखा जाएगा। मुझे सोचना पड़ेगा। हमें यह विषय ही बदल देना चाहिए।

महाराज—मैं भी यही चाहूंगा!

उपकार—(मुस्करा कर) हां! अब हम अपनी बातों पर आते हैं। क्योंकि यह भी बड़ी महत्त्व की बात है। तुम्हें याद होगा मैंने एक तजवीज़ दी थी महाराज! हमारे इन दो घरों के सम्बन्धों की।

महाराज—बेशक—आप बड़ा सम्मान दे रहे थे।

उपकार—मैं चाहता हूं कि हमारे बच्चों के आदर्श ब्याह हों—

महाराज—सन्देह नहीं! आपका हर विचार ही एक आदर्श हुआ करता है। पर—(मौनता)

उपकार—हां—मैं अपनी लड़की को बहुत कुछ दे सकूंगा। क्योंकि मेरे लिए यह सब साधारण हो गया है। इसलिए भी—

महाराज—हां हां—(उत्सुकता से पाईप के कश खींचता है) ।

उपकार—एक कार दूंगा । एक सौ तोले सोना । बीस हज़ार नकद । बीघे का मकान के लिए प्लाट । तीस चालीस हज़ार के कपड़े और दूसरा सामान । फिर शादी ऐसी करूँगा कि—

महाराज—(खुशी से) रानी बेटी तो सोने से तोली जा सकती है । आपकी खुशी ही हमारी खुशी है । हम तो वैसे भी आपके हाथ बंधे दास ठहरे । (हँसता है) ।

उपकार—(निश्चिन्त होकर) वह दिन दूर नहीं जब मैं मुख्यमन्त्री बन कर अपना मन्त्रीमण्डल बना सकूँगा । पर उससे पहले ही मैं केवल को ऐसी पोस्ट पर एडजस्ट कर दूँगा कि जिन्दगी भर पैसे और रसूख का मालिक बना रहे ।

महाराज—मैं यही चाहता हूँ । यही तो आशा करता हूँ । (दोनों हँसते हैं) (रंजना देवी और मीनाक्षी आती हैं । रंजना देवी अपनी अवस्था की ऐसी महिला है जिसके चेहरे पर आयु का कोई प्रभाव न हो । मीनाक्षी अपनी माता की जीती जागती प्रतिमूर्ति है । जिस की आकर्षक सूरत उसे विशेष व्यक्तित्व प्रदान करती है ।)

रंजना—(उत्तेजना से) ओह—डार्लिंग ! हमें बता ही देते ! यहीं आना था तो हमें साथ ले आते ! पड़ोस वालों की कार मांगनी पड़ी ।

महाराज—मुझे आफिस जाते हुए ही विचार आया । लाला जी से ज़रूरी बातें करनी थीं । सरकारी मामलों पर । पर तुम दोनों मां बेटी कैसे आ गईं ?

मीनाक्षी—(हँस कर) ही ही ही—हम सरकार के घर ग़ैर सरकारी काम पर आयी हैं ! है न मम्मी ? बिलकुल ग़ैर सरकारी काम पर !

उपकार—(अपनी हैसियत को भूल कर जो सम्मान से खड़े हैं) आओ—आओ—रंजना देवी जी । बैठो बेटी मीनाक्षी ! यह तो खूब हुआ ! वे दोनों तुम्हारे घर जाने की सोच रही थीं ।

रंजना—हमने तो फोन भी कर दिया । हम वहीं आ रही हैं । क्योंकि

राजसी लोगों को दूसरों के घरों में जाना शोभा नहीं देता जी । वड़े लोग जो हुए ! और हम ठहरे छोटे ।

उपकार—(कुछ झेंप कर) क्या जनता हमें आप से वड़े कहलाने की आज़ादी दे सकती है ? हरगिज़ नहीं देवी जी ।

रंजना—जनता पड़े कुएं में । किसने पूछा है इस वेकार जनता को जी । हम तो वस आप को ही जानते मानते हैं ।

उपकार—(कानों को दोनों हाथ लगा कर) हरे राम—हे भगवान् !—हे जनता जनार्दन ! मुझे क्षमा कर देना । (हंसते हैं)

महाराज—मादाम—फ़ालतू वातें किया करोगी, तो हमारी नौकरी को खतरे में डाल दोगी । क्योंकि हम नौकर लोग हैं । जनता के—सरकार के—और सव से ज्यादा लाला जी के । जो हर वात जनता के लिये ही करते हैं । जनता की भलाई के लिए ही ! (सभी हँसते हैं) ।

उपकार—ऐसा न करें तो हम मन्त्री कैसे रहें ! हा हा हा ! हमें वदनाम न करना रंजना देवी जी । (हँसी—राजरानी आती है) ।

रानी—(उत्तेजित सी) ओह मीना—ओह—आंटी जी !

(मीनाक्षी को आलिंगन में ले लेती है)

रंजना—(उसके गाल सहलाती हुई) कितनी प्यारी वेटी है जी । कितनी स्वीट है रानी वेटी ।

महाराज—(हँस कर) मैं समझता हूँ हमें ही हटना चाहिए । इस जगहनारी जाति का मुकम्मल कब्ज़ा ही मान लें ।

उपकार—हाँ—हाँ ! मान ही लें ।—चलो भागें ! (हँसते हुए प्रस्थान)

रंजना—रानी ! वहन जी कहाँ हैं ? (हँसी से) राजसी झमेलों में फँसी होंगीं । भला कहाँ होंगीं ! किसी समाज सेवा के काम पर वाहर गई होंगीं । परिवार नियोजन के भाषण हैं । रैडक्रास की कोई बैठक होगी । महिला सभा का उद्‌घाटन—ही ही ही—

रानी—(हँसती हुई ऊँची आवाज़ में) माता जी ! मीना और आंटी जी आये हैं । (धीमे से) माता जी की सेवाएं और राजसी झमेले घर तक

ही सीमित होते हैं आंटी जी। कहीं धोखे में न रहिएगा।

(दयावंती सब्जी की थाली पकड़े वेध्यानी से आती है)

दयावंती—(झेंप कर) ओह—बहन जी ! मैं कुर्बान जाऊँ जी ! (थाली दूसरे कमरे में फेंकती हुई) मुझे तो होश नहीं रहती। क्या करूँ जी। पता ही नहीं चला कब आयी हैं आप। बस समझो, ज़िम्मेदारियों के सौ जंजाल हैं जी।

रंजना—हां जी ! हम कैसे जानें आप जैसे बड़े लोगों को ! हम हुए जनता में से, जिन की समाज में न पूछ न प्रतीत, और न ही गिनती। (सभी हंसती हैं) रानी बेटी ! भला तू क्यों नहीं हमारे घर आती ?

रानी—आंटी जी आज आने ही लगी थी। पर आपने ही नहीं आने दिया। आप का घर देखना था।

रंजना—क्यों नहीं देखना ! जब जी चाहे आओ ! जानती हो मैंने क्या करना है ? तुझे वह घर दिखाना है कि तुम फिर वहां की सजावट ही बन जाओ ! हां—सजावट ही ! (हंसी)।

रानी—(शरमा कर) ओह—आंटी जी ! आप बड़ी ही वह हैं !

मीनाक्षी—(उत्तेजना से) ओह मम्मी—कितनी मज़ेदार बात हो ! मुझे रानी बेहद प्यारी लगती है। देखो न लम्बे-लम्बे बाल ! और चोटी कमर से भी नीचे चली जाती है। केवल भैया के लिए मांग लो इसको। है न ठीक मम्मी ?

रंजना—(आवाज़ में नाराज़गी भर कर) हां—हां—मीनाक्षी ! तुझे हथेलियों पर सरसों जमानी खूब आती है। (फीकी हँसी हँस कर) हा हा हा ! क्यों बहन जी ? जानती हो न ? आज कल के लड़के लड़कियां वह कुछ करना चाहते हैं ! वह कुछ सोचते हैं ! कि भगवान जाने वह क्या है जो नहीं करते !

मीनाक्षी—बस वही नहीं करते जो तुम ने किया था मम्मी ! बताऊँ वह क्या था ?

रंजना—(क्रोध से) मीनाक्षी !—क्या तेरी ज़बान बाहर आ कर भी बन्द नहीं रह सकती ?

दयावंती—(मीनाक्षी का बांहों में जकड़ कर) बड़ी प्यारी वेटी है वहन जी! वड़ी मिलनसार और मीठी है। मैं तो कहती हूं अगर आप हमारी राजरानी का नाता न मानों तो इसे ही हमें दे दो। हमारा मन आप के घराने पर वड़ा ही आ गया है।

रंजना—(रूखेपन से) क्यों नहीं वहन जी! क्यों नहीं। आप हमारे अन्नदाता भी हैं। जैसा कहोगे कर लेंगे जी! क्यों मीनाक्षी! अव वोल। बढ़-चढ़ कर वातें करनी तो खूब आती हैं तुझे। अव वोलती क्यों नहीं?

मीनाक्षी—हां मम्मी—रचाओ गुड्डे-गुड़िया का व्याह। हम कौन हुए! (राजरानी को पकड़े हुए अन्दर चली जाती हैं)।

दयावंती—(रंजना के साथ वैठ कर) मेरा महिंदर वहन जी लाखों के धन्धे कर रहा है। अगर भगवान की दृष्टि अच्छी रही तो कहता है जल्दी ही करोड़पति वन जायेगा। इन्हीं का वेटा होने के कारण वड़ा प्रताप है इस का भी। फिर वड़ा ही मिलनसार निकला है जी। ज़वान इतनी मीठी है कि हर किसी को मोहित कर लेता है। तभी तो मट्टी को हाथ लगाता है तो उसे सोना वना डालता है।

रंजना—मैं समझती हूं जी! आप ठीक ही कहती हो जी! आजकल जिस के हाथ में पावर है वह क्या नहीं कर सकता ज़ी?

दयावंती—दो सिनेमाओं के परमिट हैं वहन जी। एक कोलड स्टोर्ज़ है। पचास लाख में क्वार्टर वनाने का एक ठेका है। (हँस कर) ही ही ही! शराव के भी ठेके ले लिये हैं जी! कई तरह के ठेके हैं! सरकार से ही कर्ज़े जो मिल जाते हैं। वड़ा कारोवार वढ़ गया है वहन जी! आगे की कहता है चिंता नहीं रही। भगवान का जो हाथ है जी! भगवान वड़ा दयालु है वहन जी।

रंजना—(प्रभावित सी) वड़े भाग्य हैं वहन जी! हम आप के किस पाए के हुए। कोरी नौकरी से मिलता क्या है जी? वस फ़ैशन ही फ़ैशन। पांच दस हज़ार कभी हाथ आए भी तो क्या आए! उन से क्या वनता है जी! वड़ा हुआ तो, रिटायर होकर एक कोठी वना डाली! (वलवंत

आता है, रंजना को नमस्ते करता है, जो उत्तर में मौन रहती है। दयावंती भी उसे बेकार समझ कर प्रोत्साहित नहीं करती। पर वह ढीठता से सामने बैठ जाता है)।

दयावंती—बहन जी ! भगवान देने लगा है तो खूब दे रहा है। बड़ा दयालु है भगवान। अब तो यही चिन्ता है, किसी तरह बेटे बेटी अच्छे घरों में व्याह दें। यह काम निपटा दें तो चिन्ता हट जाए। पर अपनी हैसीयत के घर मिलते नहीं बहन जी !

रंजना—हां जी। रिश्ते तो हमें भी बहुत आते हैं। पर आपने पाए के नहीं आते।

बलवंत—(बेबाकी से) मौसी जी ट्रिब्यून में हर रविवार को रिश्तों के विज्ञापन छपते हैं। बड़े बड़े खानदानी लड़के लड़कियों के विज्ञापन—

दयावंती—चुप रहो लड़के नहीं समझ तुझे इन बातों की—तू क्या जाने ?

बलवंत—समझ क्यों नहीं मौसी जी ? इतना सारा पढ़ा किस लिए हूँ ? हज़ार हज़ार वेतन वाले। दो दो हजार वाले। पाँच पाँच हज़ार महीने की आमदनी वाले। बड़े बड़े खानदानी लड़के लड़कियों की तलाश अखबारों के साथ करते हैं। रुपयों के आंकड़ों के साथ करते हैं। है न मजेदार बात ? (हँसता हुआ) हा हा हा हा ! हैं न पुराने रिवाज़ बदल रहे आजकल।

रंजना—(खड़ी हो कर) मीनाक्षी ?—ओह ! मैं तो भूल ही गई। मेरा पप्पू भूखा है। उसे बिस्कुट ही खिला देते ! मीनाक्षी—(प्रस्थान)

बलवंत—(मुस्करा कर) इन का पप्पू भूंके जा रहा था। शायद बिस्कुट मांग रहा हो !

दयावंती—बलवंत अगर तुम्हें कहीं जाना है तो ठंडे ठंडे में चले जा—हमारे घर तो मेहमान आ गये हैं। बड़ी ऊँची पदवी के लोग हैं। अब तेरे साथ ज्यादा बातें भी नहीं हो सकेंगी। चल सैर सूर कर जा कर। इस समय तो सड़कें भी खाली होती हैं।

बलवंत—सड़कों पर बड़ी धूल होती है मौसी जी। बड़े समय

से आप ने तो पदल देखी भी नहीं होंगी ? बड़ी गरम होती हैं यह सड़कें। यह जगह ठंडी-ठार है। इसी लिए प्यारी लगती है।

दयावंती—अरे—तू एक वार कहता था सवेरे झील वड़ी सुन्दर लगती है। क्यों नहीं दृश्य देखने चला जाता ?

वलवंत—गर्मी से झील भी तप जाती है मौसी जी ! दृश्य तो तपिश में खो जाते हैं।

दयावंती—अच्छा—वैठा रह अकेला। तेरी इच्छा यही है तो। (प्रस्थान) (कुछ क्षण वलवंत एक पत्रिका देखता रहता है। तभी मीनाक्षी और राजरानी हंसती हुई आती हैं)

रानी—वलवन्त ! मिल मेरी परम प्यारी सहेली मीनाक्षी से। यह लेखकों में वड़ी दिलचस्पी रखती है।

मीनाक्षी—(उसे चुटकी भर कर) ऊँ !—मैं रखती हूँ कि तू री !

रानी—हाए—अव क्यों झिझकने लगी है ?

वलवंत—(हाथ जोड़ कर) लेखकों के वड़े सौभाग्य हैं मीनाक्षी जी।

इस कवीले में कौन सी दिलचस्पी की वात है ? वह कैसे आपको आकर्षित करते हैं। मुझे यह जानने की वैसे बड़ी उत्सुकता है जी। (मीनाक्षी हँसती रहती है)।

रानी—हाए—अव वता भी न ?

मीनाक्षी—जानती हो ? वह हर समय कुछ सोचते रहते हैं। है न ? हर समय कुछ बुनते रहते हैं। उन्हें न अपनी होश होती है न किसी दूसरे की ! पता नहीं कौन सी दुनियाँ में रह कर कौन सी दुनियाँ में टांगें उलझाए रखते हैं !

वलवंत—टांगें ?······कैसे ? कैसे मीनाक्षी जी ?

मीनाक्षी—(हँसती हुई) ही ही ही—ऐसे लगता है टांगें कुएं में लटकाए होते हों और सर छत के साथ टांगे रखते हों !

(तीनों हँसते हैं)

बलवंत—फिर तो दिलचस्प हैं यह लेखक लोग ! मीना जी ! लगता

है तुम्हारे अड़ोस-पड़ोस में जरूर ऐसे लेखक रहते हैं । क्योंकि आज कल कई लेखक भी बड़े अमीर हो गए हैं। ऐसे टांगों और सरों को इधर-उधर अड़ाने-तड़ाने से ! मुझे भी जरूर दिखाओ। मुझे देखने का बड़ा शौक है। शायद उन की नकल करके असल लेखक मैं भी वन जाऊँ ! कोई अमीर सा लेखक ! .(खड़ा होकर) चलो देखने चलें मीनाक्षी जी ! हैं ?

(मीनाक्षी रानी के कान में कुछ कहती है)

रानी—(हँसती हुई) ही ही ही ! वलवंत ! यह कहती है उन में तुम भी तो एक हो ! तुम्हें भी तो अपने आप की होश नहीं होगी।

वलवंत—(वैठ कर) ओह—यह वात इन्होंने खूब सोची है । मुझे अपने आप की होश भी तो कहां होती है । यह बात भी ठीक लगती है ! असल में मैं उस दुनिया में रहता ही कहाँ हूँ जिस में मीना जैसी परम प्यारी-सहेलियां मिलें । (काव्यमई सा) जिस में ऐअर कण्डीशण्ड ठण्डे कमरे हों। जहां रंग बिरंगी कारें हों। जहां रोजगार के लिए ठोकरें खाने की कोई विवशता न हो। जहां ताकत और वेहद रसूख हो। सुख और शान्ति हो। मैं सचमुच उस दुनिया मे रहता ही नहीं मीना जी।

मीनाक्षी—(शरारत से)अच्छा लेखक जी !—अब अपनी दुनिया का भी कुछ सुनाओ न ? वह कैसी है ?

वलवंत—उस दुनिया के सुनाने का क्या अर्थ ? चलो प्रत्यक्ष देखलें।

मीनाक्षी—(हँस कर) ही ही ही !कहां है वह ? हवा में ?

वलवंत—(दोनों बाहें पसार कर) जी बाहर की सारी ही धरती जिसे हम भारतवर्ष कहते हैं वही दुनिया है। चाहो तो उस के विलाप सुनो। चाहो तो उसको सिसकियों में जीती को देख लो।

मीनाक्षी—(व्यंग से) ओह—लेखक जी सीरियस हो चले !

रानी—(बात बदलती हुई) वलवंत—क्या हमारे साथ शाम का शो देखने चलोगे ?

मीनाक्षी—पर अगर इन की दुनियां में शो ही न हों तो कैसे जाएंगे जी ?

बलवंत—(हँस कर) हा हा हा ! आप गलत निकलीं मीना जी। मेरी दुनिया में प्रकृति की किसी भी चीज़ की मनाही नहीं होती। शर्त यह है कि उस तक पहुंच हो। फिल्म तो क्या मैखाने तक जा सकता हूँ। बेशक ले जा कर देख लो। (वे दोनों खिलखिला कर हँसती हैं)।

रानी—अच्छा फिर मैं सिनेमे की सीट बुक करा देती हूँ। मैखाने वाला प्रबन्ध आप कर लेना—(तीनों हँसते हैं)।

बलवंत—पर जो शो घर के सामने हो रहा हो, वह क्यों न देखा जाए ? जिन्दा स्क्रीन। जीते जागते ऐक्टर और जीता ही नाटक। बिल्कुल जीते जागते दृश्य ! वह क्यों छोड़ दें ?

दोनों—(उत्तेजित सीं) कहां ? कौन सा नाटक ?

बलवंत—मतलब—कि जिस दुनिया में तुम रहती हो वह इस धरती से ऊपर की दुनिया है। शायद हवाई दुनिया है। या अपने आप में बन्द सी एक दुनिया है। जिस में इर्द गिर्द की हवा तक नहीं जाती। इस लिए तुम्हें पता नहीं लगता कि वास्तविक दुनियां में क्या हो रहा है !

मीनाक्षी—(व्यंगमई अन्दाज़ से) क्या हो रहा है लेखक साहब ? आप किस दुनिया की बातें कर रहे हैं ?

बलवंत—(उसे बेबाक नज़रों से देखता हुआ) जी उस दुनियां की जो आप के ड्राएंग रूमों से बाहर बस्ती है ! जहां हर तरह के दुःख होते हैं। जहां हर समय न्याय के लिए पुकार उठती रहती है। जहां की हाहाकार भरी आवाज़ सदा दबा दी जाती है। ऐसी आवाज़—ऐसी ही पीड़ित और कुचली जाती आवाज़ आज एक बार फिर उठने का प्रयास करेगी। और शायद बाहर की उस पिछड़ी दुनिया का टकराव इस ड्राएंग रूमी दुनियां के सुख आराम से आज हो जाए। वह टकराव बड़ा नाटकी होगा मीनाक्षी जी !

मीनाक्षी—(अचम्बे से अपनी जगह सिकुड़ कर बैठती हुई)। ओह—फिर क्या बनेगा लेखक साहब ? भूचाल तो नहीं आएगा न ?

बलवंत—भूचाल आएगा मीना जी ! ज़ोर के धमाके होंगे। रोने कुरलाने का शोर पड़ेगा। भगदड़ मच जाएगी।

मीनाक्षी—हाए—कहीं भाग चलें रानी ? (दोनों हँसती हैं) ।

बलवंत—पर जल्दी ही लड़खड़ा कर लहू से लथपथ वह दुनियां अपनी कुचली स्थिति में लौट जाएगी। उस की कुरलाहट की आवाज़ कुछ देर तक उठती रहेगी। फिर धीरे-धीरे खामोशी में बदल जाएगी।

मीनाक्षी—तो हमारी दुनियाँ का क्या बनेगा जी ?

बलवंत—भी आप की इस ड्राइंग रूमी व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं आएगा। यह जैसी की तैसी सजी सी नज़र आएगी। शान्त और अचल भी दिखाई देगी।

रानी—(प्रभावित सी) ओह—पर कब तक ?

बलवंत—जब तक इस ड्राएंग रूमी दुनिया का भ्रम बना रहता है। जब तक इसे कुचलने में सफलता होती रहती है। जब तक अपने सुख और विलास की प्राप्ति ही जिन्दगी का समस्त कर्त्तव्य माना जाता रहेगा।

मीनाक्षी—रानी ! लेखक महोदय कौन सी बातें करते हैं ? यह कैसी बुझारतें हैं ?

रानी—नौकर किसी प्रदर्शन की बात कर रहे थे। वही बात होगी। मजदूर कोई अर्थी बना कर जलाने की भी कारवाही बना रहे हैं।

मीनाक्षी—(उत्तेजना से) अरी हां—उन्हें पुलिस गोलियां चला कर ठीक कर देगी। डैडी शरारतियों को सीधा करने की कोई ऐसी ही योजना बना रहे थे !

बलवंत—हां—हां। शरारतियों को ! उस दुनियां में रहने वाले सारे के सारे शरारती ही शरारती हैं। इन ड्राईंगरूम वालों से शरारतें ही करते हैं। (कुछ मौन रहकर) पर कई बार कितने होश खो देते हैं मीना जी ? प्राणों को हथेली पर रख कर लगते हैं बड़ी-बड़ी शरारतें करने। बिलकुल जैसे कोई निराश आदमी अपना ही दुश्मन बन गया हो न ? अपने शरीर को नष्ट करने पर तुल जाऐ, उसी तरह !

रानी—फिर वे शरारती कैसे हुए ? चाहे निराश हों—

मीनाक्षी—इन्हीं की तरह—ही—ही ही ! (हंसी)

वलवंत—(हँस कर) हा हा हा ! आप गलत निकलीं मीना जी । मेरी दुनिया में प्रकृति की किसी भी चीज़ की मनाही नहीं होती । शर्त यह है कि उस तक पहुंच हो । फिल्म तो क्या मैख़ाने तक जा सकता हूँ । वेशक ले जा कर देख लो । (वे दोनों खिलखिला कर हँसती हैं) ।

रानी—अच्छा फिर मैं सिनेमें की सीट बुक करा देती हूँ । मैख़ाने वाला प्रवन्ध आप कर लेना—(तीनों हँसते हैं) ।

वलवंत—पर जो शो घर के सामने हो रहा हो, वह क्यों न देखा जाए ? जिन्दा स्क्रीन । जीते जागते ऐक्टर और जीता ही नाटक । बिल्कुल जीते जागते दृश्य ! वह क्यों छोड़ दें ?

दोनों—(उतेजित सी) कहां ? कौन सा नाटक ?

वलवंत—मतलव—कि जिस दुनिया में तुम रहती हो वह इस धरती से ऊपर की दुनिया है । शायद हवाई दुनिया है । या अपने आप में बन्द सी एक दुनिया है । जिस में इर्द गिर्द की हवा तक नहीं जाती । इस लिए तुम्हें पता नहीं लगता कि वास्तविक दुनियां में क्या हो रहा है !

मीनाक्षी—(व्यंगमई अन्दाज़ से) क्या हो रहा है लेखक साहब ? आप किस दुनिया की वातें कर रहे हैं ?

वलवंत—(उसे वेवाक नज़रों से देखता हुआ) जी उस दुनियां की जो आप के ड्राएंग रूमों से वाहर वस्ती है ! जहां हर तरह के दुःख होते हैं । जहां हर समय न्याय के लिए पुकार उठती रहती है । जहां की हाहाकार भरी आवाज़ सदा दवा दी जाती है । ऐसी आवाज़—ऐसी ही पीड़ित और कुचली जाती आवाज़ आज एक वार फिर उठने का प्रयास करेगी । और शायद वाहर की उस पिछड़ी दुनिया का टकराव इस ड्राएंग रूमी दुनियां के सुख आराम से आज हो जाए । वह टकराव वड़ा नाटकी होगा मीनाक्षी जी !

मीनाक्षी—(अचम्वे से अपनी जगह सिकुड़ कर वैठती हुई) । ओह—फिर क्या वनेगा लेखक साहव ? भूचाल तो नहीं आएगा न ?

वलवंत—भूचाल आएगा मीना जी ! ज़ोर के धमाके होंगे । रोने कुरलाने का शोर पड़ेगा । भगदड़ मच जाएगी ।

मीनाक्षी—हाए—कहीं भाग चलें रानी ? (दोनों हँसती हैं)।

बलवंत—पर जल्दी ही लड़खड़ा कर लहू से लथपथ वह दुनियां अपनी कुचली स्थिति में लौट जाएगी। उस की कुरलाहट की आवाज़ कुछ देर तक उठती रहेगी। फिर धीरे-धीरे खामोशी में बदल जाएगी।

मीनाक्षी—तो हमारी दुनियाँ का क्या बनेगा जी ?

बलवंत—भी आप की इस ड्राइंग रूमी व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं आएगा। यह जैसी की तैसी सजी सी नज़र आएगी। शान्त और अचल भी दिखाई देगी।

रानी—(प्रभावित सी) ओह—पर कब तक ?

बलवंत—जब तक इस ड्राएंग रूमी दुनिया का भ्रम बना रहता है। जब तक इसे कुचलने में सफलता होती रहती है। जब तक अपने सुख और विलास की प्राप्ति ही जिन्दगी का समस्त कर्त्तव्य माना जाता रहेगा।

मीनाक्षी—रानी! लेखक महोदय कौन सी बातें करते हैं ? यह कैसी बुझारतें हैं ?

रानी—नौकर किसी प्रदर्शन की बात कर रहे थे। वही बात होगी। मजदूर कोई अर्थी बना कर जलाने की भी कारवाही बना रहे हैं।

मीनाक्षी—(उत्तेजना से) अरी हां—उन्हें पुलिस गोलियां चला कर ठीक कर देगी। डैडी शरारतियों को सीधा करने की कोई ऐसी ही योजना बना रहे थे!

बलवंत—हां—हां। शरारतियों को! उस दुनियां में रहने वाले सारे के सारे शरारती ही शरारती हैं। इन ड्राईंगरूम वालों से शरारतें ही करते हैं। (कुछ मौन रहकर) पर कई बार कितने होश खो देते हैं मीना जी ? प्राणों को हथेली पर रख कर लगते हैं बड़ी-बड़ी शरारतें करने। बिलकुल जैसे कोई निराश आदमी अपना ही दुश्मन बन गया हो न ? अपने शरीर को नष्ट करने पर तुल जाऐ, उसी तरह!

रानी—फिर वे शरारती कैसे हुए ? चाहे निराश हों—

मीनाक्षी—इन्हीं की तरह—ही—ही ही! (हंसी)

(रामउपकार और महाराजकृष्ण का प्रवेश)

उपकार--बेटियो ! तुम दोनों अन्दर चली जाओ। हमें कुछ जरूरी बातें करनी हैं।

(दोनों हँसती हुई चली जाती हैं)

बलवंत—(उठ कर) मुझे भी जाना चाहिये। चूंकि आप—

उपकार—(काट कर) नहीं--तुम यहीं ठहरो। तुम उन लोगों को नजदीक से जानते हो। तुम समझा सकते हो उन्हें। बड़े बेसमझ लोग हैं। अपनी सरकार के ही दुश्मन बन जाते हैं ! (बैठते हैं)

बलवंत—शायद सरकार इसकी मजबूरी उत्पन्न करती है।

उपकार—ऐसे नहले पर दहला मारने की बात नहीं करते बेटा। हमारी सहायता करो ताकि उन्हें सीधे राह पर ला सकें।

बलवंत—(फीकी हँसी से) मैं तो सेवा करने को तैयार ही रहता हूँ। पर मुझे इस योग्य समझे भी कोई। बाकी कौन दुश्मन है कौन सज्जन है, इसका निर्णय हर किसी के कर्म करते हैं।

महाराज—दुश्मन इसी तरह के लोग हैं। मुजरिम प्रवृति के ! उजड्ड और अमोड़ होने के कारण !

बलवंत—(रोष से) नहीं—वे लोग मुजरिम पहले हैं जो इन्हें इस स्थिति से ऊपर नहीं उठा सके। जो अपने कर्तव्य पूरे नहीं करते। पर उनके बदले अपनी हर तरह की वसूली कर लेते हैं। कर्तव्य और दायित्व की भावनाओं से रिक्त वह लोग अपनी हरकतों के कारण अशांति उत्पन्न करते हैं। वह स्वार्थ को ही धर्म मानते हैं। वह दोषी हैं। समाज और देश के दुश्मन हैं।

उपकार—खैर जो वास्तविक्ता है उस सम्बन्ध कई मत हो सकते हैं। उस पर तकरार नहीं हो सकता !

बलवंत—तकरार होना चाहिए ! आवश्यक बात पर तकरार क्यों हो ? होना चाहिये !

उपकार—अच्छा देख—मैंने इन भूख हड़तालियों से एक बार मिलने

का फ़ैसला किया है। ताकि बाद में कोई गिला न करे।

बलवंत—हां—इस से पहले कि कोई मनुष्य भूख से मरने पर विवश हो जाए, क्या हरज है अगर उसे बात कर सकने का छोटा सा अधिकार दे दें !

उपकार—हां—हां ! मिलाने का काम तुम्हारा है। पर ध्यान रहे, यह भेंट छिपी भेंट होगी ! जिसका पत्रकारों को पता न चले।

बलवंत—इस का प्रबन्ध हो जाए गा। मै कहता हूँ उन्हें। (प्रस्थान)

महाराज—आपको ऐसा करना नहीं चाहिए था। मैं इसकी जिम्मेदारी नहीं ले सकूंगा। अब भी सोच लीजिए।

उपकार—आखिर मिलने में एतराज़ भी क्यों हो !

महाराज—लेकिन मिलने का अर्थ क्या है ? यही कि आप नरम पड़ रहे हैं। जो कमज़ोरी आप दिखाएँगे वह सरकार की समझी जाएगी।

उपकार—(खिड़की से बाहर की ओर देख कर) पर मेरा दायित्व सरकार और जनता दोनों के समक्ष है। आप की बात में भी बल है। आप को यह कहने का अधिकार भी है। मैं तो कहता हूँ आप को किसी भी तरह के दायित्व का डर नहीं होना चाहिए।

महाराज—पर ऐडमिनिस्ट्रेशन इस कदम को ठीक नहीं समझेगी। वह भी मेरी मौजूदगी में। मैं वहाँ क्या जवाब दूंगा। मुझे अपनी पोज़ीशन और प्रैस्टीज की चिंता हैं।

उपकार—(उसके सम्मुख बैठकर) महाराज कृष्ण ! हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि प्रजातंत्र में राजसी और प्रबन्धक कामों में कैबीनिट का फैसला अधिकारियों के फैसलों से ऊँचा फैलसा होता है।

महाराज—(हँसकर) पर आप भूल रहे हैं। आप का यह क़दम कैबीनिट का निर्णायक क़दम नहीं है।

उपकार—(रोष में आते हुए) हैरान हूँ ! हम लोग नौकरशाही की बातें त्याग क्यों नहीं देते ! हम जनतावादी क्यों नहीं बन जाते। अगर ब्यूरोक्रेसी बदल जाए तो निश्चय ही देश के भाग्य बदल जाएँ। इसकी बुरी

परम्पराएँ ख़त्म हो जाएँ । मैं समझता हूँ—इसके न वदलने का मतलव है हमारी स्वतंत्रता का अपूर्ण हुए रहना । मेरा दायित्व कैबिनेट के आगे है, विधान सभा के सामने है । और जनता प्रति भी है । नौकरशाही के आगे कैसे हुआ ?

महाराज—(फीकी हँसी से) हा हा हा । मान लिया नहीं है । क़ानून के सामने है । क़ानून के सामने लाला जी, जिस के प्रति हम सभी उत्तरदाई हैं ।

उपकार—हां, क़ानून ! जो मोम के नाक की तरह हो । जिस किसी में बल हो इस नाक को मोड़ ले ।

महाराज—(हँसी से) क्षमा करना । मंत्री लोग ज्यादा ही मोड़ते हैं । पर मैं भी क्या करूँ ? मेरे हाथ पांव मेरे ऊपर के अधिकारी वांधे रखते हैं ।

उपकार—(वैठ कर) यही दुर्भाग्य है देश का दीवान साहव ! यहाँ छोटे से छोटा कारिन्दा भी स्वयं को वहुत वड़ा हाकिम समझता है । आप तो खैर वड़ी ऊँची पदवी पर हो । लोगों के अभिमान यहाँ देखते ही वनते हैं !

महाराज—हो सकता है । पर हम कई तरह के बन्धनों से बुरी तरह जकड़े होते हैं ।

उपकार—हां हां—कई तरह की भ्रष्टाचारी से ! काम न करने की नियत से भी । यह भी भ्रष्टाचारी है । कचहरी का चपड़ासी भी कई बार कोई मिसल तव निकालता है जब उसके इन बन्धनों को पैसों से कुछ ढीला कर सकें । हैरान हूँ—हमारे सारे क़ानून, क़ानून के कारिन्दों पर क्यों न चलें । सरकारी मशीन आप कानूनवद्ध क्यों न वने !

महाराज—(फीकी हँसी से) मैं चाहता हूँ वने पर नहीं बनती !

उपकार—क्योंकि भ्रष्टाचारी एक पुरानी सामाजिक बुराई है जिसे हर कोई सहने का आदी है । इस में पड़ने का भी !

महाराज—(हँसता हुआ) ही—ही—ही ! हियूमन नेचर है !

मनुष्य का स्वभाव !

उपकार—यह क्यों न मानें कि हमारी सुस्ती हमारी मानसिक अराजिकता के कारण है ! फिर जो कुछ भी हम राजसी या सामाजिक स्तर पर करें तुम उन्हें रोकते हो ! हर तबदीली के उलट खाइयां खोद लेते हो। सामाजिक न्याय हम क्यों नहीं दे सके !

महाराज—क्योंकि साधन नहीं ! (हँसी में) हा हा हा। क्या गलत है यह ?

उपकार—नहीं—क्योंकि हम स्वार्थी निकले हैं। दायित्व ले लेते हैं पर उसे निभाने की योग्यता नहीं रखते। आसान राह है भ्रष्टाचार में पड़ना। उसी में पड़े रहते हैं। जरूरत से कहीं ज्यादा इकट्ठा करने के जनून में फँस जाते हैं। जहाँ व्यक्तिगत लाभ हो वहाँ बहुत दे देते हैं। जहाँ देना हो वहां कुछ नहीं देते ! घर में भेद-भाव की दीवारें घर के बड़े ही जब खड़ी करने लगें, तो उस घर का क्या होगा ? वहाँ झूठ, चालाकी, मक्कारी और ज़ोर ही शेष रह जाते हैं। हम यही कुछ लाए लगते हैं।

महाराज—(मुस्करा कर) आप भी तो इसी खेल के खिलाड़ी हैं ! हैं न आप भी ?

उपकार—हां—पर मैं इस फ़ायलों भरे खेल से निकलना चाहता हूँ !

महाराज—पर निकल नहीं सकते ! (हँसी में) हा हा हा ! मानते हैं न ?

(प्रबोध आता है)

उपकार—क्या है कोई नई खबर ?

प्रबोध—हां साहब !—लेकिन नई बात तो नहीं। क्योंकि उनमें फूट पड़ती ही रहती है। अब भी दो तीन धड़े हो गये हैं ! कुछ आप से मिलने को तैयार हैं। कुछ इसका विरोध करते हैं।

महाराज—यही हम भी चाहते हैं !—(हँसी)

उपकार—मुझे एक मज़ेदार विचार आया है ! (मुस्करा कर)

हां ! मुझे पता चला था कल फ्रिज़ में बहुत से फल रखे गये थे । भला कौन से फल थे ?

प्रबोध—सर—अंगूर थे ! आम—आलूबुखारे, चैरी, खुरमानी, लीची, सेब भी थे । करीब पन्द्रह एक किलो होंगे ।

उपकार—(हैरानी से) पन्द्रह किलो ! यहां सीमाएँ तोड़ने का रिवाज क्यों पड़ता जा रहा है । हैरान हूँ ! अगर कपड़े आते हैं तो मीटरों की जगह थानों में लाए जाते हैं । सोना आता है तो ग्रामों की जगह किलोग्राम में आ गया है । मुझे डर है किसी दिन चीज़ें किलोमीटरों और क्विंटलों तक न छूने लगें । आखिर क्या लूट का पैसा है या पैसे बाढ़ से बहते चले आ रहे हैं ?

प्रबोध—जी—जी ! मुझे निवेदन करना था ।—वास्तव में यह सब उपहार में आए थे । बंसीलाल की मिसिल के सम्बन्ध में जी !

उपकार—(क्रोध से) मुझे विवरण की जरूरत नहीं प्रबोध ? मैं ऐसा व्यवहार पसन्द नहीं कर सकता । लोग छोटे-छोटे उपहार देकर बड़े-बड़े काम निकालने लगते हैं । और तुम लोग मुझ से पूछे बिना—

प्रबोध—(बीच में काट कर) जी बीबी जी ने ले लिये । वैसे बंसीलाल की यह बुरी आदत है सर । वह हर सप्ताह ऐसे दे जाता है । मिसिल की याद दहानी में । और बीबी जी को आदत है—

उपकार—वह ले लेती है (निहत्था सा लगता हुआ) मैं नहीं यह पसन्द करता । खैर—इन फलों को प्लेटों में डाल कर यहां मेज़ पर रख दो । जनता का माल जनता के प्रयोग में आ जाए तो मुझे रंज नहीं होगा ।

प्रबोध—सर—अभी लीजिए ! अभी—

उपकार—आमों के टुकड़े करो । चैरी, खुरमानी, सेब—सब ठीक से लगा दो । और—और ठंडे शर्बत के जग ? सुक्रैश आदि को भी तैयार करो । केवड़ा डाल कर । समझे ? जल पान सारा सुगन्धित लगे । इन पेयों में मीठा अधिक हो । क्योंकि भूखे प्यासे गर्मी के मारे प्राणी को जब मीठी ठंडाई पीने को मिले तो उसकी आत्मा शांत हो जाती है ।

महाराज--ताज़े ठंडे फल भी मिलते हों तो बात ही क्या उस आत्मा की—(हँसते हैं)।

प्रबोध—जी हां ! यह मज़दूर लोग बहुत कुछ खा सकने की भी कमज़ोरी रखते हैं। बल्कि मैं दोनों हाथ जोड़ कर स्वागत भी करूँगा। ताकि—

उपकार—(टोक कर) बस बस। कभी-कभी तेरी अकल हवा से बातें करने लगती है। जा जा—वह आने ही वाले हैं।

प्रबोध—जी—जी—अभी लो (प्रस्थान)।

महाराज—(प्रसन्नता से) आपकी समझ बूझ बेहद तेज है लाला जी। पर यह बात इस अतिथि सेवा में ही निपटनी चाहिए।

उपकार—आप देखते रहिये महाराज कृष्ण ! (टहलता हुआ) हम कई कष्ट झेल चुके हैं। भूखहड़ताल की बेकरारियां और उसकी मानसिक प्रतिक्रियायें क्या हैं ? यह जानते हैं। (उसके पास बैठ कर) हम बड़े निर्बल लोग हैं। बातों से चाहे कुछ भी बनते रहें। पर हमारी व्यवस्था इतनी कमजोर और खराब है। वातावरण इस क़दर बिगड़ा रहता है। भ्रष्टाचार इतना है—अनुशासन की इतनी कमी है ! काम से इतना जी चुराया जाता है। साहस की यहां इतनी जरूरत है कि किसी भी बूते खड़े नहीं रह सकते।

(प्रबोध और बैरे बड़ी प्लेटों में फलों को रखे और जगों तथा गिलासों को उठाए प्रवेश करते हैं। और मेज़ पर टिकाने लगते हैं)

महाराज—अगर बुरा न समझें तो मैं इस दृश्य से हट जाता हूँ। क्योंकि मुझे यह शोभा नहीं देता ! एक उच्च अधिकारी के नाते।

उपकार—इन लोगों से मिलना ? हा हा हा। (हँसकर) ठीक है। इज्ज़त बदले मिलना न मिलना। करना न करना ! यह यहाँ की रीति है। चाहे इज़्ज़त या हैसियत वास्तव में हैं या नहीं—इस पर किसी का ध्यान न भी जाए। (खड़े होकर) पर आओ मेरे साथ। आपको एक मज़ेदार बात बताता हूँ। (दोनों भीतर चले जाते हैं)।

प्रवोध—वस तुम भी काम करो अपने। (वैरे भी भीतर चले जाते हैं। वह स्वयं फलों को जल्दी से वारी वारी खाता है और एक गिलास सुकेश का पी लेता है। अचानक राम उपकार और महाराज कृष्ण आते हैं)।

उपकार—(अंगूरों के दाने खाते हुए) प्रसाद समझ कर खाओ सचिव साहव! हमारे अतिथि सत्कार की आप को दाद देनी चाहिए!

महाराज—(मुस्करा कर कुछ खाता हुआ) मेरा विचार है अगर शैतान इन्सान को गुमराह करने आ जाए तो इस से बढ़ कर भी क्या करे?

(दोनों हँसते हैं। वलवंत आता है)

वलवंत—वह आ गए मौसा जी! वाहर खड़े हैं। कहो तो—(हैरानी से वहां पड़े पदार्थों को देखने लगता है।)

उपकार—(मुस्करा कर) उन के लिए प्रतीक्षा करने को यह जगह मैंने तैयार करा दी है। उन्हें यहां आना चाहिए ताकि इन सोफों पर आराम से वैठें। हम उन्हें प्रतीक्षा करने का अवसर भी तो देना चाहते हैं।

वलवंत—क्या यह सव ठीक है? मेरा संकेत नैतिक दृष्टि से है। भूखों के सामने यह सारे पदार्थ रख कर उन्हें मानसिक मार से विह्वल करना, यह निर्दयता नहीं तो क्या है?

उपकार—(उस के कंधे का सहारा लेकर) देख, हर वात पर मतभेद हो सकते हैं। प्रजातंत्र का सव से वड़ा उपहार इस देश को यही मिला है। चाहे यह हमें कितना ही महिंगा पड़ा हो।। खैर इस समय यहां से हमें हट जाना चाहिए। हमें अतिथि सेवा की पवित्र भावना और अनशन ग्रसित अपने सम्मानित अतिथियों के वीच खड़े नहीं रहना चाहिए। प्रवोध! जा उन्हें सनमान से ले आ। और यहां लाकर अकेले में छोड़ दे—

प्रवोध—जी लीजिए—अभी भेजता हूं! (प्रस्थान)

उपकार—तुम दोनों इधर आओ—(तीनों भीतर चले जाते हैं। चार मजदूर नेता प्रवोधकुमार के साथ प्रवेश करते हैं। ये चारों देखने में भूख के मारे कमज़ोर और असहाय से लगते हैं। सभी के चेहरों पर वाल बढ़े हुए हैं। और वे हाव भाव से भी निष्प्राण से लगते हैं।)

प्रबोध—आप कुछ देर के लिए यहीं बैठ जाइये। साहब थोड़ी ही देर में आते हैं। (बाहर चला जाता है। चारों मजदूर परेशान से इधर-उधर देखते हैं। उन के चेहरों पर हैरानी और बौखलाहट के सम्मिलत प्रभाव आते जाते हैं।)

पहला—(फलों आदि को देखता पर पीछे हटता हुआ) मुझे लगे हमें जाल में फंसाया जाने लगा। भाईयो संभल वंभल जाईयो!

दूसरा—हां। या बात महारे को भी लगे ऐसी!

तीसरा—अबे कईसा जाल—कईसा फंसना फंसाना? (होठों पर जबान फेर कर) सरकार ने बाहर सख्त पहरा लगाए रखा। कहीं हड़ताल में मिलावट न होई जावे! भाई नहीं दाव लगने दिया एक टुकड़ा भी भोजन के खाने का। पर हमने कहां था खाना कोई—(निराश सा सोफ़े पर गिर सा पड़ता है)।

चौथा—यहां पर पहरा नहीं रखा गया याड़ी। याह बात बांकी नजर आवे।

पहला—भाई मंत्री जी का जो घर ठहरा। राम उपकार जी का! पहरे हमार तुम्हार पर होवैं! पुलिस की जान न निकल जावे! इन पर लगा कर तो दखावे हैं?

चौथा—बड़ा देवता लागै महारे को भाईयो! कैसा सुन्दर जगह पर बैठाया हम को! जल पान भी रखा मेहमान जान कर कै! खाएं न खाएं हमारी अपनी बात! सुना सवेर शाम माला से जाप करत हैं। मुझे लगै महारी मांगों को पूरा करके छोड़ै। जनता के हित में रहवैं! मजदूरों कै खास मैं। समाजवाद कै वड़ा तरफ़दारी रखने वाला मंत्री सुना मैंनैं! सोशलज़म का—हां?

तीसरा—मांगें पूरियां करकै छोड़ै तो क्या? कौन सी कमी सरकार का घर मां?

(दूसरा अंगूरों का गुछा उठा कर सारा ही मुंह में भर कर खाने लगता है। अन्य सभी आश्चर्य से उसे देखते ही रह जाते हैं)।

दूसरा—(मुस्करा कर) सरकारी माल सरकार के लेखे ! वेबसी कास की। हैं ? (और भी खा कर) मुझे कौन सा किसी ने देख लिया है ! (हँसता है)।

पहला—(आक्रोश से) अवे तुझे जरा भी शरम नहीं आती ? हड़ताल तोड़ दी तूने तो ! सौघंध किस वात की खाई थी ? वता ?

दूसरा—हड़ताल ऐसे टूटने लगी तो हड़ताल कैसी ? हैं ? असली हड़ताल जव टूटै, तव दुनिआ जानवै याड़ी। या तो मां ने पानी पीया। वस कोरा पानी। अंगूर तो ऐसे होवै जैसे कपसोल मां पानी ! जरा गहरी सोच कर देख लवो—

(और भी खाता जाता है)

तीसरा—(खुशी से) हां—या वात ठीक लगी मुझी को भी। महार से तो सूखे गले वात न होएगी। (सुक्रेश का गिलास पीकर) मेरी वात जानो कोरा पानी निकला। चाहे ठंडा और मीठा होवै। यह भी किसी ने देखा थोड़ा है ? कोई नाहीं देखा। हांए ?

दूसरा—यही तो मैं सोचता था। (शर्वत का गिलास पीकर) पानी और फल ! याह दोनों चीजें हैं जो लोगों ने वड़े वरतों पर भी नहीं त्यागे। ऋषियों ने भी नाहीं ! इसी लिए तो सासत्र अछे लागैं। अवे आंखें फाड़ फाड़ क्या देखत हो उलूओं की मानिंद ? याह कोई अन्न थोड़ा जो हड़ताल टूटै !

पहला—(चैरी के दाने खाता हुआ) चाहे तेरी वात ने सक हटा दिया। पर याड़ी जरा ध्यान से खाइयो। किसी का खटका आवै तो ऐसे में हो जाईवो जैसे किसी ने कुछ चखा भी न हो। वस यूं नजरें ही मारीं ! और फरस पर बैठ जाईयो ! फरस पर ! (तेजी से खाने लगता हैं)।

चौथा—यही गौर करने की वात बची। (तेजी से खाता और पीता हुआ) ऐसे लगै जैसे कुछ नहीं पीया। चाहे इन चीजों को खाने पीने से हड़ताल टूटै कोई नाहीं—(जल्दी में दो गिलास पीकर) निरोल अम्बरत हनूमान गोसायीं का याड़ी ! मैं वताऊँ ? जितना पीयो उतना पानी पा डालो। (दो गिलास और पीता है। उतना ही पानी डाल देता है)।

पहला—(आम जल्दी जल्दी खाता हुआ) मैं बताऊँ ? छिलके जेबों में डाले जावो ! कोई न जाने—कोई न देखै ! हमारी हड़ताल कैम की कैम रहवै !

दूसरा—(खाता खाता) अगर जेबों की किसी ने तलासी ले ली ? जा वे अकल के वैरी !

पहला—तव फिर फूलदानों के फूलों के वीच छिपावो। आई बात समझ में रे अकल के घनी ? (हँसी)।

तीसरा—(मुंह में आम का टुकड़ा सावत निगाल कर) याड़ी किसी का परदा के पीछे मां होना लगै। छोड़ दो सारे—

दूसरा—हां भाइयो छोड़ दो सारे। (मुंह की चीज़ निगाल कर फ़र्श पर ही उदास सा मुंह वना कर बैठ जाता हैं। बाकी के भी उस का अनुकरण करते हैं।)

(राम उपकार, महाराजकृष्ण, और बलवंत प्रवेश करते हैं)।

उपकार—(हाथ जोड़ कर) सज्जनों—यह देख कर हमें अत्यंत खुशी हुई है, कि आप लोगों ने अनशन तोड़ लिये हैं। हमें यही आशा थी। हर रूठा वच्चा जब रूठना छोड़ कर घर लौटता है, तो वह घर में तैयार पदार्थों पर सव से पहले हाथ साफ करता है। हमें तुम्हारी इस स्वाभाविक सी आजादी पर रत्ती भर भी हैरानी नहीं हुई।

महाराज—(उन की ओर पीछा कर के) चलो बात ख़तम हुई। अब जाने दो इन्हें।

उपकार—हां मित्र जनों ! तुम्हारी जरूरत को सामने रख कर ही यहां फल और जल एकत्र किये गए थे। क्योंकि हम जानते थे कि भूख हड़ताल से तुम्हारे हाज़में कमज़ोर हो चुके हैं। बाकी जितनी जरूरत हो उतनी और भी खाओ ! जी भर कर खाओ। इस से हमें और भी खुशी होगी।

पहला—(धीमी खांसी खांस कर) महारी इतनी सारी मांगों का क्या बना माई बाप ? आप की दया से अब की भूख तो गई। पर रोज रोज़ की

भूख का क्या बनें ? महारे बच्चों की रोज की भूख का भी महाराज! उस पर ध्यान करें हजूर !

दूसरा—(हाथ जोड़ कर) हां—श्रीमान जी ! हज़ूर जी ! आप तो हमरे माई बाप ठहरे महाराज ! हमरी कौन सी हड़तालें मालिक ? कौन सा हड़त लों का टूटना। अब कै महारी मांगों पर गौर करें—हजूर जी से हाथ जोड़ विनती करते हैं।

उपकार—(मुस्करा कर) रूठे बच्चे की मानसिक मांग उसके रूठने को हटाने की होती है। जो इस अनशन को तोड़ कर हम ने पूरी कर दी। बाकी बच्चा तो यह भी कहेगा कि हाथी को डब्बी में डाल कर उस के हवाले किया जाए। ऐसी मांग कौन पूरी करे ? हैं ? (हँसता है)।

पहला—हम गुजारे की उजर मांगत ! हाथी नहीं मांगत हजूर।

उपकार—हां जो कसर रह गई है, उसे बेशक पूरी करो। खूब फल खाओ ! शर्बत पीओ। सारा ही माल अपना समझो तो एतराज़ नहीं हमें।

तीसरा—(रोष से) आप की चाल समझ गए मालिक ! आओ चलें साथिओ ! हमारी भूख हड़ताल कैम की कैम है भाईयो !

बाकी के सभी—(रोष में) हां—हां कैम की कैम है।

तीसरा—सरकार और भूख हड़तालियों की जनता माई बाप है। अब जनता के पास ही जावैं। चल करके पतरकारों को बयान देवैं। बातचीत मंत्री जी की हठधर्मी पर टूटी है। देस भर के मजदूरों, विद्यार्थियों से अपील करें वह ऐसी निकम्मी सरकार का पासा पलटने को संगठन करें। जलूस शहर शहर में निकलें। अरथियां जलानी शुरू हो जाएं। चलो चलें भाईयो—

अन्य सभी—(एक साथ) हां—चलें। यही करत। यही करत हैं।

उपकार—(परेशानी में) ओहो—कुछ समझ नहीं आई ! हम समझे नहीं ! (सर मलता सा) मैं बताऊँ ? तुम जल्दी कर रहे हो। अभी बातचीत खतम कहां हुई है ?

बलवंत—बल्कि बातचीत शुरू भी नहीं हुई। ठहरो मित्रजनों—(उन्हें रोक कर) मैं निवेदन करता हूँ कि हर कर्म के पीछे अगर भावना

स्वच्छ हो तो झगड़े नहीं होते। अगर मजबूरी दयानतदारी से है, तो भी नहीं होते। नहीं तो परिणाम ठीक नहीं निकलते।

उपकार—नहीं, नहीं! यह झूठे हैं! यह—यह ईमानदार नहीं निकले।

बलवंत—यही दोष दूसरों के हैं। आपके भी हैं!

उपकार—(रोष से अपने ध्यान) क्या तुमने फल नहीं खाए? शर्बत नहीं पीए? हड़ताल क्यों नहीं टूटी? दिन के उजाले को तरह यह सच्चाई उजली है। तुम सब झूठ नहीं बोल सकते!

पहला—(विनय से) माई बाप जी! किसी ने देखा नहीं किसी ने जाना नहीं!

उपकार—हम ने देखा है। हम सभी ने देखा है परदों के पीछे छिप कर। तुम ने पेट भर-भर कर फल खाए हैं। शर्बत पीए हैं। भूख हड़ताल टूट गई है। यह बात तुम्हें माननी पड़ेगी। बात तभी आगे बढ़ सकेगी।

तीसरा—कोई नहीं मानै। अखबार वालों ने नाहीं देखा? जनता ने कोई न देखा। सरकारी लोग तो झूठ बोलत हैं। गरीब को कुचल कर रखने को। झूठ ही झूठ बोलैं। यह बात जनता को भी मालूम है। दूसरों को भी! हजूर कोई न मानै आप की बात!

(रामउपकार सदमे भरी स्थिति में एक ओर बैठ जाता है। अन्य सभी भी मौन रहते हैं।)

बलवंत—साथियो अब अपनी मांगों पर रोशनी डालो।

महाराज—(लापरवाही से) नहीं—उनको सुनने की गौरमिन्ट की कोई अपरूवल नहीं मिली।

बलवंत—क्या अन्याय और धोखा देने की अपरूवल होती है?

महाराज—हमें बेकार बहस में पड़ने की जरूरत नहीं। यह कानून और लाकानूनी का मसला है। यह जा सकते हैं।

तीसरा—अच्छा साथियो अब लड़ने मरने को तैयार हो जाएँ। जब तक जनता का ज़ोर न पड़ा, किसी ने ध्यान नहीं देना हमारी मांगों पर!

अन्य सभी—(एक साथ) हां—जनता हमारी माई बाप ! चलो चलें।

(सभी जाने लगते हैं तो रामउपकार उठकर उन्हें रोक लेता है)

उपकार—ठहरो—मैं सुनने को तैयार हूं।

पहला—ठीक कहा माई बाप ! हमें इसीलिए जो बुलाया था आपने !

चौथा—(उसका हाथ पकड़ कर) अबे चल ! गधा कहीं का ! चल बाहर ! पहली चाल से ही हम समझ गये तो।

पहला—(हाथ छुड़ा कर) थोड़ा दम तो ले मेरे यार ! काहे की जल्दी है ? वहां भी भूख से तो मरना है।

तीसरा—चलो मन्त्री जी की बात सुन कै अब जावैं।

(कुछ समय का अनिशचित सा मौन रहता है)

उपकार—(महाराज कृष्ण को संकेत करके) सरकार के यह सचिव हैं सज्जनों। अगर कहो कि यह सरकारी मशीन के दूसरे इंजनों में से एक हैं, तो गलत नहीं कहोगे। वह मशीन इन्हीं के चलाए चलती है। पर वह मशीन अंधी है। बड़ी ज़ालिम भी है। उसके नीचे जो आ गया, समझो वह पिस गया। वर्षों तक वह मशीन हमें कुचलवाती रही। अगर सोचो तो अब भी हम उसके आगे बेवस और लाचार नज़र आते हैं।

पहला—हज़ूर ! फिर तो यह मशीन हम सभी की दुश्मन हुई। क्यों न इसे ही मिल कर खतम कर डालें।

महाराज—जो कानून का दुश्मन है उसी की वह मशीन दुश्मन होती है।

बलवंत—मैं तो समझता हूँ अपने आप की भी दुश्मन है। चाहे इस की चेतना नहीं इसमें।

उपकार—(बैठ कर) तो मित्र जनों ! जो बात हमारे हाथ से निकल जाती है, वह इस सरकारी अमले के हाथ आ जाती है। पर सरकारी अमले का अर्थ पुलिस भी है। पुलिस का मतलब है ज़ोर ! ज़ोर से होती हैं मौतें, हरासतें, मुकदमे……फ़ाके……रोने चिल्लाने की हाहाकारें।

चौथा—(भावावेष से) हम धमकियों से डरने वाले नहीं मन्त्री जी ! मज़दूरों का एका किसी भी जुलुम के लिए तैयार है।

अन्य सारे—(उठ कर) हां—हम तैयार हैं। तैयार बरतैयार—

उपकार—(उन्हें बैठा कर) नहीं मेरे मित्रो ! इस देश में कोई भी चीज़ अपने आप में तैयार नहीं कहला सकती। भूखहड़तालें भी नहीं। क्योंकि यहाँ हर चीज़ में मिलावट है। यहाँ तक कि नसल में भी ! कोई भी अशुद्ध चीज़ पूरी सूरी नहीं होती। इसलिए तैयार बरतैयार नहीं होती।

तीसरा—-मजदूर मिलावट कहां पर करै हज़ूर ?

उपकार—वह भी मिलावट करता है। जब काम नहीं करता। जब मांगों पर ही ज़ोर देने लगता है। तब भारी मिलावट करता है। यही हालत दूसरों की है। मैं तो जब अहिंसावादी को समाजवादी से घी खिचड़ी हुआ देखता हूँ तो मुझे मिलावट का रूप नज़र आता है। अहिंसा और हिंसा की मिलावट का ? जब साम्यवादी सम्प्रदायक्ता का पक्ष लेता है तो क्या होता है ? मिलावट ! विद्यार्थी विद्या की प्राप्ति की जगह विद्या से छुटकारे के बहाने बनाता है। शरारत और तोड़ फोड़ करने पर गर्व करता है। जबकि उसे सृजन पर गर्व होना चाहिए। भ्रष्टाचारी से सरकारी अमला जब कानून के नाम पर कानून का गला घोंटता है, तो अपने कर्तव्य में ज़हर भर देता है। यहाँ हर प्रतिकूल चीज़ मिल जाती है। हर बात उलट-पलट हो जाती है। जिसके पीछे दिमागी फ़ितूर है। मानसिक अराजिक्ता है। यही फ़ितूर और दिमागी कुरूपता अगर पहचान जाएँ, तो हमारी मुश्किलें मिट जाएँ। हम भी आगे बढ़ सकें।

चौथा—गरीबों के मालिक। यह सब ठीक होवै है। पर ऐसी बारीक बातें हम गरीब कैसे समझें ? महारी मांगों पर गौर करें हज़ूर ! मज़दूर का पेट भोजन से भरै, बातों से नाहीं भरै है।

बलवंत—आखिर इस समस्या का समाधान कैसे हो ? आप सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं करते !

उपकार—यहाँ जानने न जानने से क्या बनता है ? क्या किसी

नें कुछ बनता देखा भी है ? यहां वह व्यवस्था है जो यह सिखाती है कि जो देखा है उसे अनदेखा मान लो। (हँस कर) हा हा हा ! पर अगर यह ज़िद करनी छोड़ दें तो मैं इनके साथ हो जाऊँ !

दूसरा—उस साथ का क्या पता ! महारी मांगें मानें तो हम आप के होवें।

उपकार—मांगों के लिए मेरा वचन है। मेरी ज़बान है। मैं वचन देता हूँ। तुम्हें न्याय ज़रूर दिलाऊँगा !

चौथा— वही दिला दो मालिक। तव हम हड़ताल छोड़ दें।

उपकार—नहीं ! पहले हड़ताल की छुरी हटाओ ! न्याय हम दिलाएँगे।

तीसरा—कैसे दिलाएँगे महाराज। हमें साफ-साफ़ बता देवें।

उपकार—मैंने निर्णय किया है कि तुम्हारी मांगों का मामला अपनी सिफ़ारिश के साथ एक आयोग के सपुर्द कर दूँ ! क्योंकि यह बात सरकारी अमले को इस बात में लाने के बिना नहीं हो सकेगी।

पहला—पर आप अच्छे-बुरे के मालिक हों। काहे को झांसा देत गरीबन को हज़ूर ?

उपकार—सेवक हूँ मेरे भाई। (महाराज कृष्ण की ओर हाथ उठा कर) असल मालिक हैं यह सचिव साहब। इनका सारा सरकारी अमला ! उस अमले की सिफ़ारिश के बिना······उसके सहयोग के बिना, इस देश में कुछ नहीं होता ! इसीलिए आयोग नियुक्त होते हैं। समितियां बनती हैं। उनकी रिपोर्टें आती हैं। तभी सरकार कुछ करने योग्य होती है। नहीं तो हमारे इरादे खाक में मिल जाते हैं। सो उस आयोग का फ़ैसला इस अमले का फ़ैसला होगा। जो सरकार का माना जाएगा। वही लागू किया जा सकेगा ?

तीसरा—अगर हमें मंजूर न हुआ ?

उपकार—तो फिर हिंसा भरा टकराव। (कुछ देर सभी मौन रहते हैं)।

पहला—हम टकराव-वकराव नहीं चाहते । अगर महारी मांगें ऐसे में मानी जाएँ—

उपकार—(उत्साहित होकर) ज़रूर मानी जाएँगी । आयोग बड़े ऊँचे, न्यायशील दयावान अधिकारियों का बनाया जाएगा ! इस बात का मैं आश्वासन देता हूँ ।

सभी—हम विश्वास करत हैं । करना पड़ै !

उपकार—अब हड़ताल छोड़ दो ।

(चारों एक ओर होकर कुछ ही क्षण कानो में बातें करते हैं)

दूसरा—(आगे बढ़ कर) कुछ ही देर मैं महारा जलसा होने को है हज़ूर ! आप अवश आईयो । यही वैदा वहां करियो । फिर हमें फलों के रस के गिलास देईयो । तव हम हड़ताल तोड़ दैं । क्यों भाईयो ?

बाकी के—हां हां—यही करैं !

उपकार—क्यों महाराज कृष्ण ?

महाराज—आपने मेरी हैसीयत को बेपरदा कर दिया है । मैं कुछ कहूं भी तो कैसे कहूँ ? (सभी हँसते हैं)

[पर्दा गिरता है]

अंक दूसरा

[दृश्य में विशेष परिवर्तन नहीं आता । समय संध्या का है । बाहर से शोर निरन्तर अन्दर आता रहता है । जिस से आंतरिक वातावरण भी बाहर की तरह उत्तेजित हो जाता है । बाहर का दरवाजा पूरी तरह खुलता है—शोर और अत्यधिक वढ़ता है । दो युवक प्रवेश करते हैं । दरवाजा वंद कर के अंदर से चिटकनी लगा देते हैं । शोर आना समाप्त हो जाता है ।

महिंदर, चेहरे और हावों भावों से चंचल, गंदमी रंग, शरीर से सुगठित, देखने में प्रभाविक व्यक्तित्व का युवक, आते ही दराज से व्हिस्की की वोतल और दो गिलास निकाल कर मेज़ पर रख लेता है । जिसे देख कर केवलकृष्ण के जवान सुंदर चेहरे पर खुशी भरी लालिमा छा जाती है । और मीनाक्षी के चेहरे का सा उल्लास झलकने लगता है । फिर दोनों जल्दी से पैग उठा कर पीने लगते हैं ।]

केवल—(सोफ़े पर बैठ कर) वड़े वोर हुए यार महिंदर ! सैंकड़ों लोगों से हाथ मिलाने पड़े । हर अजनवी की वातें सुननी पड़ी । न किसी से जान पहचान, न किसी से सरोकार ! वस—लोकाचारी की मजबूरी से ही !

महिंदर—ले उस सब कुछ को पैग में डुवो दें—(दोनों गिलास टकराते हैं चुसकियां लेते और हँसते हैं) हा हा हा—पर केवल ! फ़ंक्शन कितनी कमाल की थी ! क्या लाजवाव रही यार ?

केवल—(हँस कर) हा हा हा—मैं कहता हूँ पूछ ही न कुछ ! गवर्नर की पार्टी भी ऐसी नहीं हो सकती । प्रान्त के सारे नेता, सेठ, कारख़ानेदार, आफ़ीसर्ज़ सभी अपनी पत्नियों के साथ थे । फ़ंकशन थोड़ी लगती थी, जश्ने ताजपोशी लगती थी । हा हा हा—

महिंदर—(घूँट भर कर) जो हुआ आशा से बढ़ कर हो गया। शायद इनकी हस्ती को देख कर हुआ। (गर्व से) पर शादी पर देखना। देश के कितने बड़े बड़े नेता आते हैं!

केवल—(पीकर गिलास नीचे रखते हुए) पर यार कुछ बोझल सा लगता था। यह सब कुछ। शायद हम लोगों के टेस्ट बिगड़ गये हैं। (स्वांग भरता हुआ) राज गाने मुल्क। महाराजाधिराज की छत्र छाया में, राजकुमार और राजकुमारी का सगाई उत्सव! ही ही ही!—बहादराने मुल्क! राज गाने हकूमत—शाही ठाठ बाठ वाले। (हँसता हुआ) हा हा हा! बंदे की बेमिसाल शान थी। आए गए तो अपनी प्रजा लगते थे। जैसे मैं ही मैं था। और सभी तो बस शतरंज के प्यादे ही दिखाई देते थे। (दोनों हँसते हैं)।

महिंदर—हां मेरे हीरो। (घूंट भर कर) पर मैं समझता हूँ हीरोइन का ध्यान ज़्यादा रखा गया। तीस चालीस हज़ार के उपहार और शगुन के रुपये रानी को लोग यूं ही दे गए। (गर्व से) पर हमारा ख़र्च भी बीस पचीस हज़ार से कम नहीं हुआ। वैसे पूरा हिसाब अभी होना है।

केवल—(प्रभावित सा) बहुत खूब! (महिंदर व्हिस्की और डालता है)।

महिंदर—ले, आ जा!

केवल—यू आर स्पलेण्डिड! (दोनों गिलास टकराते हैं) यह स्काच कभी कभी हाथ आती है। टू योर वैलदीनैस।

महिंदर—टू योर स्वीट हैल्थ (दोनों पीते हैं) ऐसी बोतल विशेष अवसर के लिए मैं रख लेता हूं। (दरवाज़ा खटकता है। जल्दी में उन सब को वे दराज़ में छिपा देते हैं। महिंदर दरवाज़ा खोलता है। बलवंत आता है)

बलवंत—हैलो—अरे यह दरवाजा बंद करके क्या हो रहा था? (भांप कर मुस्कराता हुआ) हरटी कनगरैटस मिस्टर केवल! वहां मैंने विश किया पर आप का ध्यान नहीं पड़ा!

केवल—(महिंदर से) इन की परिभाषा ?

महिंदर—श्री वलवंत ! हमारी एक दूर की मौसी का वेटा (व्यंग से) आज कल यह पालिटिक्स में डुबकियां खा रहे हैं। हा—हा हा ! (हँसी)

वलवंत—(फीकी मुस्कान से) कई वार डुबकियां खाते हुए वहुत कुछ उलट पलट भी लगता है। महिंदर भाई ! अगर तू मज़ाक न करे तो कौन करे ? (उन के सामने बैठ कर) पर यार ! क्या आज का फ़ँकशन इतने बड़े पैमाने पर करना जरूरी था ? कुछ हद से वाहर का सा लगा। लोगों में विरोध भाव सा था। ऐसे में कई बार नुकसान—

केवल—(टोक कर) नुकसान ! टाक सैंस मैन ! इन के हिसाव से सव मिला कर हज़ारों का लाभ ही रहा !

महिंदर—(घृणा से खड़ा होकर) इस में वुरा क्या लगा ? तुझे उल्टी वातें ही सूझती हैं ! एक मरे मुरदे की तरह ! यह क्यों नही कहता कि इस से बढ़ कर भी हो सकता था। इस से वढ़ कर होना चाहिए था। पचास हज़ार भी खर्च हो सकते थे। अस्सी हज़ार भी। जब दुनिया आगे ही आगे वढ़ रही है। कोई ऐसी बढ़ी चढ़ी वात कर। (उसे निरुत्तर देख कर) आ केवल वाहर चलें। (केवल के साथ जाता हुआ) वदतमीज़ ! वेलगाम, रैंच—मिज़रेवल—(प्रस्थान)

(वलवंत क्रोध में पीछा करने लगता है पर फिर अनिश्चित सा मेज़ के सहारे खड़ा हो जाता है)

वलवंत—(स्वयं से एक एक शब्द पर वल देता हुआ) रैंच ! मिज़रेवल ! वेलगाम ! हां हां ! पास कुछ न हो तो रोया करो। बनाने वाले के हां गिड़गिड़ाओ। दुनिया भर को कोसा करो। अगर आ जाए तो धन के प्रदर्शन में सीमाएं तोड़ दो। अपनी औकात भूल कर राजों महाराजों के स्वांग वन जाओ। उचित अनुचित का अन्तर क्यों समझो ! भाई चारा, मनुष्यता, कला या साहित्य, यह सव तो भूत हैं। इन्हें नज़दीक न लगने दो। परिवार और परिवार परवरी सव से वड़े धर्म हैं। मर मिटो इन के लिए। मर मिटो शूरवीरो ! (राजरानी आती हैं)

रानी—(चौंक कर) ओह—तुम ! मुझे देख बिल्कुल बुत बन गये हो। जैसे किसी फिलासफर का बुत हो ! पर तुम्हारी आवाज़ कैसी आ रही थी ! ऊँची ऊँची क्रोध भरी। क्या कह रहे थे बलवंत ?

बलवंत—कुछ नहीं ! कुछ भी नहीं ! (कुछ मौनता) पर—लगता है मैंने अभी बधाई नहीं दी ! हार्दिक बधाई हो रानी !

रानी --(हैरानी से) ओह ! पर तुम इतने उदास क्यों लगते हो ? बधाई ऐसे लहजे से भी देता है कोई ?

बलवंत—क्या बधाई देते हुए असली लहजे बदल भी जाते हैं ?

रानी—हां ! दिल में खुशी हो तो चेहरे पर झलक आती है। पर लगता है तुम्हें खुशी नहीं हुई। चलो तब क्या हुआ ? पर फ़ँकशन कैसा था बलवंत ?

बलवंत—(मुस्करा कर) तुम जानती तो हो। मुझ से क्यों पूछती हो ?

रानी—तुम उदास जो हो।

बलवंत —उदास कैसा ? तुम्हें यूँ ही ऐसे लग रहा है।

रानी—कैसे मैं बताऊँ ? मुझे ठीक नहीं लगा। पता नहीं क्यों ! यह तो ऐसे था जैसे मैं किसी महाराजे की राजकुमारी थी। लोग तो बस न्योछावर हो रहे थे। पर इस झूठी नकल से मैं मुँह ऊँचा नहीं उठा सकी। यह सब अच्छा नहीं लगा। पता नहीं क्यों !

बलवंत—(खड़ा होकर) वैसे किसी राजकुमारी को सुरख़ाब के पर थोड़े होते हैं। साथ ही जिन के यहां नई नई दौलत आ जाती है वह किसी राजे राणे से कम भी कहां होते हैं ? पैसे से तो बुरा भी भला लगने लगता है। है न ? और फिर अच्छा बुरा तो कुछ भी नहीं होता रानी ! आज के ज़माने को देख कर कहता हूँ। यूँ ही सोचने की बात होती है।

रानी—फिर तुम क्या सोचते हो ? यह क्या ठीक ही ठीक हुआ ?

बलवंत—मेरे सोचने न सोचने से फ़र्क थोड़ा पड़ता है। और तुम जानती हो मेरे सोचने का ढंग थोड़ा टेढ़ा होता है। प्रचलित विचारों सेमे ल

नहीं खाता । इसी बात ने तो परेशान कर दिया है मुझे । और मेरे सम्बन्धियों को भी । (फीकी हँसी में) हा हा हा ! और फिर मेरी सगाई थोड़ी थी जो मुझे सोचना पड़े ।

रानी—(लज्जा कर) ओह ! अगर तुम्हारी सगाई होती तो कैसे सोचते ?

बलवंत—पता नहीं कैसे सोचता ! (रानी हँस देती है) ।

(मीनाक्षी रानी को पुकारती हुई आती लगती है)

रानी—यह मुझे छेड़ने को आ रही है । मैं इसीलिए छिप रही हूँ । बताना नहीं बलवंत ! (प्रस्थान)

[मीनाक्षी आती है]

मीनाक्षी—(ठिठक कर) ओह—लेखक महाराज ! सारी दुनियां एक तरफ़ और लेखक महोदय दूसरी तरफ़ ! इस बस्ती रसती दुनियाँ को छोड़ छाड़ आप अकेले यहाँ क्या कर रहे हैं जी ?

बलवंत—(फीकी मुस्कान से) मैं तुम्हारी जगमगाती दुनियाँ की चकाचौंध से घबरा कर इधर-उधर छिप रहा हूँ । ताकि अपने होश पर काबू पा सकूं !

मीनाक्षी—अच्छा जी ! भला होश को क्या हो चला था जी ?

बलवंत—बाहर बेहद लोग थे । एक से एक अमीर थे । एक से एक मायानाज़ थे । मैं बड़ा लागर सा इन्सान हूँ मीना जी ! बड़ा गरीब और बड़ा मसकीन हूँ । अमीरी की चकाचौंध से मेरी आँखें चुंधिया जाती हैं । वह सब जो सामने हो रहा हो उस दृष्टि से नहीं देख पाता जिस तरह लोग देखते हैं । और देख कर बेहद प्रसन्न होते हैं ।

मीनाक्षी—(न समझ कर हँसती हुई) ही ही ही ! अच्छा जी ! पर मुझे तो देख सकते हो जी ?

बलवंत—जी हां ! पर उतना सा ही जितना कोई पहाड़ धुंध में घिरा देखा जा सके । उसके अंतर के भेद क्या हैं, यह न जाना जा सके !

[दोनों हँसते हैं]

मीनाक्षी—ओह हो हो ! आप सचमुच बड़े दिलचस्प हो जी ! अच्छा, यह तो बताइये, रानी इधर तो नहीं आई थी ?

बलवंत—जी आई थी। पर थोड़ी देर ही रुकी और चली गई।

मीनाक्षी—ओह ! आप रोक ही नहीं सके होंगे ! तब तो उसने चले ही जाना था। (व्यंग भरी हँसी में) हा हा हा ! आप इस साधारण बात को नहीं जानते ! (कमरे में इधर-उधर देखते हुए) री मेरी होने वाली भाभी ! तुम कहां छिप गई हो ? (प्रस्थान)

[संध्या का हल्का अंधेरा छा रहा है। बलवंत माथे को हाथ से थामे कोने में एक कुर्सी पर बैठ जाता है और कुछ सोचने सा लगता है। रामउपकार और महाराज कहकहे लगाते हुए प्रवेश करते हैं।]

उपकार—(खुशी में) मेला बिखर गया ! भद्र लोग लौट गये। अब तो साधारण लोग ही रह गये। शुक्र है दीवान साहब ! मेरी इज़्ज़त रह गई। सफ़लता से सब कुछ निपट गया। आप की क्या राय है ? क्या हो गई तसल्ली ?

महाराज—तसल्ली ? हा हा हा ! (हँस कर) यह पूछूं कि कसर क्यों नहीं रहने दी गई ? आख़िर कुछ तो कमी रहती !

उपकार—(गर्व से) मैंने इस घटना पर प्रांत के इतिहास की छाप लगा दी है। जिस ने देखा, जो सम्मिलित हुए, सब साक्षी हो गये। उम्र भर लोग याद करेंगे कि लाला राम उपकार की लड़की राजरानी की सगाई के फ़ँकशन पर गये थे। और फ़ँकशन लाजवाब थी।

महाराज—(हंस कर) क्या यह नहीं कहेंगे कि लड़का दीवान महाराजकृष्ण का था। ऐसा चांद ! ऐसा होनहार कि इस अवसर पर प्रांत की सारी जैंट्री हाज़िर हो गई।

उपकार—(हँसता हुआ एक पत्रिका सामने खोलता हुआ) आप की बात ने मात कर दिया। शायद इसी लिए कहते हैं कि बेटी वालों के सर झुके होते हैं। ठहरो—(ऐनक लगाता हुआ) प्रबोध यह पत्रिका दे गया

था। शाम के समाचारों की ! कहता था देख ज़रूर लेना ! (विजली का स्विच ग्रान कर के रोशनी में पढ़ता हुग्रा) ग्रोह ! छप गई लगती है। सारी कारवाई ही शायद !

महाराज—छपती कैसे नहीं ? ग्राप की हस्ती देख कर ! ग्रौर फिर मेरी भी ! हा हा हा ! (हँसता है)।

उपकार—(गम्भीरता से पढ़ता हुग्रा) समाजवाद के मुखौटे में नाग का यथार्थ, कहावती उपकार करने वाले ग्रौर समाजवादी वनने के शौकीन कैविनिट मंत्री रामउपकार के भेद खुले ! ग्रपनी लड़की की सगाई के सम्वन्ध में मंत्री जी ने एक वेमिसाल दावत दी ! उस दावत पर प्रांत का हर पूंजीपति वुलाया गया। जनता का धन ग्रौर भ्रष्टाचार से इकट्ठा किग्रा हुग्रा पैसा पानी की तरह वहाया गया। वेटी की सगाई नौकरशाही के एक वदनाम खरदिमाग़ कारिंदे के लड़के से कर के इस वात को सिद्ध कर दिग्रा कि—(पत्र को क्रोध में टुकड़ टुकड़े करके फैंक देता है)।

महाराज—(क्रोध से) इतनी सख्त वदतमीज़ी ग्रौर लाकानूनी ? पत्र बंद करा दें। मैं कहता हूँ प्रैस सील करा दें ग्रौर संपादक को कैद कर लें।

उपकार (खड़े होकर) यह मेरे दुश्मनों की शह पर किया गया है। दुश्मन ईर्ष्या से जलते हैं दीवान जी ! वे किसी का तो क्या, किसी की वहन वेटी का सुख भी नहीं देख सकते। लोगों की ग्रात्मा इस कदर गिर चुकी है !

वलवंत—(उठ कर ग्राता हुग्रा) हां हां—क्योंकि वे ग्रपने जैसे गिरे, पर ग्रपने उलट ज्यादा सफल ग्रादमी को खुले ग्राम फिटकारने की मूर्खता करने लगते हैं।

उपकार—(चौंक कर) तू—तू यहां कहां छिपा बैठा था ?

वलवंत—मैं तो यहीं था। शायद ग्राप इस लिए नहीं देख सके क्योंकि ग्राज ग्राप वेहद मस्त हैं। खुशी के नशे में हैं न। ऐसे में चीज़ें दिखाई नहीं देतीं। ख़ास कर महत्वहीन शकलें। जो शकलें नहीं फर्नीचर लगने लगती हैं।

महाराज—(क्रोध से) ख़ामोश—बदतमीज़ आवारा न हो तो ! समझ नहीं आती आप इस जाहिल को यहां आने क्यों देते हो !

बलवंत—(बेबाकी से) उस व्यवस्था ने दीवान साहब—उस एसटैबलिशमैंट ने जिस ने आप जैसे मोटे दिमाग़ वाले चेतना रहित कारिंदे इस समाज को दिये हैं, उसी ने मुझ जैसे बेबाक सम्बन्धी भी दे रखे हैं। नई व्यवस्था बड़ी कमज़ोर निकली है। वह पुरानी एसटैबलिशमैंट को ठुकरा नहीं सकी। उसी तरह बेकार किस्म के सम्बन्धी ठुकराने अभी मुश्किल हैं हाकिम साहब। क्योंकि लोकाचारी, लोकलाज और परदापोशी की ज़रूरतें इस की रुकावटें होती हैं ! हां जी ! हा हा—(हँसता है)।

महाराज—(क्रोध में तिलमिला कर) खामोश—बेवकूफ़ ! यह क्या बेहूदगी है ? यह सब क्या बकवास है ?

उपकार—यह तो पगला है दीवान जी ! क्यों ध्यान देते हो ? आओ चलें इस पत्र के सम्बन्ध में सोचते हैं। आओ (प्रस्थान)

रंजना—(आती आती) ओह। मीनाक्षी कहां हो तुम। केवल—केवल—नहीं वह हैं— (प्रस्थान)।

(महिंदर तेज़ी से आता है)

महिंदर—केवल यहां आया था ? मीनाक्षी आई थी ?

बलवंत—(व्यंग से) ओह—कितना हंगामा है। कितनी बेकरारी है। बदहवासी की अजीब सी स्थिति है ! इन्सान को इन्सान दिखाई नहीं देता न ? (हँसता है)

महिंदर—(तिलमिला कर) तू यहां क्या कर रहा है ?

बलवंत—मैं ? मैं तुम्हारे गुणों के हिसाब लगा रहा हूँ !

महिंदर—(क्रोध से) शट अप ! बदतमीज़ निकम्मा कहीं का ! देखता नहीं बाहर कई तरह के मेहमान बैठे हैं ? अगर किसी से मिल मिला नहीं सकता तो न मिल। बकवास करने का क्या मतलब ?

बलवंत—क्या मैं उन लोगों से मिलने के योग्य भी हूँ ?

महिंदर—बाहर तुम जैसे कई एक नेता हैं। जिन्हें तुम्हारी तरह

किसी जगह से जाने की जल्दी नहीं होती । बाबू जी को मिलने का अवकाश नहीं ।

बलवंत— (खड़ा होकर) हां—हां जो तुम्हें भी बहुत कम हैं । पर मुझ जैसे बेकार ऐसे बेकार नेताओं की खबर ले सकता है । जाने की मुझे भी जल्दी नहीं उन्हें भी जल्दी नहीं । हा हा—(हँसता हुआ चला जाता है)

महिंदर—शुक्र है—इसी बहाने पीछा तो छूटा ! (ऊँची) केवल ? हे केवल—(केवल आता है)

केवल—मैंने कहा वह क्रैंक भागा कि नहीं ? इस जगह से भूतों की तरह चिमटा हुआ है ।

महिंदर—डौंट वरी ! मैंने क्रैंक को क्रैंकों के पास ही भेज दिया है । अब थोड़ा चैन मिलेगा । (बोतल निकाल कर गिलासों में व्हिस्की उँडेलता हुआ) यार प्राइवेसी का नाम नहीं रहता । खास कर जब यह हिप्पी बिना बुलाए आ जाता है । यह ढीठ है आवारा कुते जितना । जिसे जितना चाहे फिटकारो वह दुम हिलाता पीछे ही लगा रहता है । (दोनों पीने लगते हैं) और डालूं ?

केवल—(घूंट भर कर) बस—और नहीं पीऊँगा । आऊट न होने लगें । हम क्लब में तीन नहीं तो चार पैग पीते हैं ।

महिंदर—(एक बार फिर उंडेल कर पीता हुआ) पर हम बिज़नैसमैन छः सात पी जाते हैं । अरे —यार मीना को नहीं देखा ।

केवल—रानी को ढूंड रही थी । (ऊँची आवाज में) मीनाक्षी—रानी !

महिंदर—कम आन बोथ आफ़ यू ! आओ थोड़ा डांस करें । (बाकी का पैग पीकर गिलासों और बोतल को दराज में रखता हुआ) ओह !—मुझे एक बिल्कुल नई बात सूझी है । ए डील ! जस्ट ए डील ।

(फ़ोन करने लगता है)

केवल—(खुशी में) आह—हा—हा ! मैं कौन हूं ? यह दुनिया क्या है ? यह दुनिया कहां है ! यह तो हैवन हैं । आई ऐम इन हैवन—हैवान !

ओहो—हो ! (स्वयं से हँसता है)

महिंदर—हैलो —हैलो ! (फ़ोन पर)—कौन ? ओह—हां हां ! लाला बरकत राए !—क्या आप ! हां—हां । मैं महिंदरकुमार बोल रहा हूं !—जी हां—आज खूब रहा !—हां सब शानदार रहा—ओह ! आप भी मुझ से मिलने की बात सोच रहे थे ?—बहुत खूब ! ख़ैर एक तजवीज़ है ! हां—हां !—वही प्रोहिबिशन की फ़ाइल अंतिम निर्णय के लिए मेज़ पर पड़ी है ।——हा हा हा ! फ़ार यू ए डैमोकलज़ स्वोर्ड । (हँस कर) हा हा हा ! तो क्या विचार है ?——हां हां ! तीस हज़ार से इतना तो हो सकता है कि इलैक्शन के बाद तक स्थगित हो जाए !—उसके बाद तो आप जानते हैं, किसी बात की जल्दी नहीं रहती ! नहीं तो इलैक्शन स्टंट के तौर पर आप का बिज़नैस कुरबानी का बकरा ! (हँसता हुआ) हा हा हा !——जरूर जरूर——अजी यह तो सब खेल हैं !—हां तो क्या हुआ ? बस तीस हज़ार की बात है ।——अजी आप के पावों की धूल हैं——जी हां——मैं जो वचन देता हूँ ।—अच्छा अच्छा ! बीस बोतलें ब्लैक नाईट की भी भेजना ! —ओ के !—

(फ़ोन रख कर मुस्कराता हुआ केवल के सम्मुख ट्विस्ट करनी शुरू करता है) ।

केवल—(हैरानी से) कमाल है !——तीस हज़ार कमा भी लिए ! और धुंआ भी न निकलने दिया !

महिंदर—(हँसता हुआ) हा हा हा—कैसे है ? (एक सेब को काटता है, जिस का एक टुकड़ा खाता है । दूसरा उछाल देता है) ऐसे मैं दो लाख पैदा कर सका हूं । कुछ सरकारी कर्ज़ आसानी से मिल गये हैं । जिस से एक ज़बरदस्त कारोबार चल रहा है । साल दो साल और तो मैं करोड़पति बन जाऊँगा ! ताकत मेरे कदमों तले बिछ जाएगी । इसे कहते हैं किस्मत मेरे दोस्त ! इसे कहते हैं आज़ादी । शहरी आज़ादी । देश की आज़ादी । अपनी आज़ादी— हा हा हा ! (हँसता और नाचता है) ।

केवल—आई लाईक दि स्टाईल ! (खड़ा हो जाता है)

महिंदर—आई लाईक मीनाक्षी ! (ऊँची आवाज़ में) मीना ! मीनाक्षी !

(हँसती और खिलती सी मीनाक्षी और राजरानी प्रवेश करती हैं)

केवल—आओ न.........थोड़ा ट्विस्ट हो जाए । (मीनाक्षी महिंदर के साथ और राजरानी केवल के साथ मिलकर नाचना शुरू करती हैं) ।

रानी---(मुँह दूर करती हुई) केवल जी।.........आप के मुँह से बू आती है ! (महिंदर को सूँघती हुई) ऊँ !—तुम बड़े बैड हो महिंदर भईया ! मैं भी कहूँ इन के कदम क्यों उखड़ते हैं !

केवल—उखड़ते नहीं । कहो तेज़ क्यों हैं । बेसबर क्यों हैं ! कि इन में संगीत क्यों भर गया है !

रानी—(मुँह बनाकर) ऊँ !—तेज़ हैं—बेसबर हैं ! संगीत वाले हैं ! तुम आदमी बड़े ही ख़राब होते हो । अगर खुश न हो तो खुश होना चाहते हो ! अगर खुश हो तो ज़्यादा खुशी को ढूँडते हो ! तुम्हारी किसी बात की हद नहीं होती ।

केवल—हदों को पार करने में ही तो सफ़लता है ! खुशी है । नशा है ! आ न डांस करें !

(उसके हाथों को हाथों में लेकर नाचने लगता है)

महिंदर—ठहरो—मैं रिकार्ड लगाता हूँ ! (रिकार्डोग्राम चला देता है । ट्विस्ट की धुन और नाच से एक दम वातावरण में हंगामा फैल जाता है । दयावंती भागती हुई आती है) ।

दयावंती—(हैरानी से) राजरानी ! बेटा महिंदर । बेटा केवल कृष्ण ! हाए तुम—तुम सब क्यों नहीं समझते ?

(वे सभी नाचने में ही मस्त रहते हैं ! रंजना आती है)

दयावंती—देखो महिंदर ! तुम्हारा कितना शोर है । बाहर कितने ही लोग बैठे हैं ! जरा सोचो ! वह क्या कहेंगें ?

रंजना—वन्द करो न केवल। सुनते नहीं तुम ? लोग क्या सोचेंगे ?

केवल—टू हैल विद दी पीपल मम्मी ! खड़ी क्या देखती हो ? आओ ट्विस्ट करें ! (आगे बढ़ कर उसका हाथ पकड़ता है। और ट्विस्ट कराने लगता है। रंजना हँसती हुई बड़े स्वभाविक ढंग से नाचते लगती है।)

दयावंती—(हँसती हुई) हा हा हा ! बहन जी तुम तो खुद भी नाचने लगीं। मैं कहती हूँ बड़ों और छोटों में फ़र्क नहीं होता क्या ?

केवल—(उसका हाथ पकड़ कर) हां, नहीं होता क्योंकि सभी की ज्ञानेन्द्रियाँ एक सी होती हैं। (उसे खींचता हुआ) आंटी जी आओ न। बच्चों के साथ ट्विस्ट करो ना।

महिंदर—हां हां; माता जी ! अगर आज न नाची तो फिर कब नाचोगी ? रानी की सगाई की खुशी में। देखो न आज हमारी इज़्ज़त प्रांत के बड़े-बड़े लोगों ने कितनी बढ़ा दी है। (उसे सभी तंग करते हैं तो वह बड़े वेढंगे ढंग से नाचने लगती है। सभी में हँसी और शोर मच जाता है)।

(अलग-अलग दिशाओं से रामउपकार महाराजकृष्ण और बलवंत प्रवेश करते हैं। कुछ क्षण वे सब हैरानी से उस कौतुक को देखते हैं)

उपकार—(अति क्रोध में) यह क्या तमाशा है ? कैसी बेहूदगी है ? वन्द करो इस हंगामे को.!

महिंदर—(मस्ती भरी आवाज़ में) आज बेहद खुशी का दिन है। कमाल का अवसर है। इसीलिए खुश हो रहे हैं। आओ········आप भी आओ। मिलो हम से ······है ?

उपकार—(टोपी उतार कर उसकी ओर करता हुआ) क्या इस टोपी को फैंक दूँ ? इस खादी को पांवों तले रोल दूँ ? (सर पर हाथ मार कर) यह बाल सफैद कैसे हुए हैं ?

महिंदर—क्यों ? हर किसी के हो जाते हैं !

उपकार—नहीं—इन स्वदेशी आदर्शों को रखने में हुए हैं। देश के लिए बलिदानों के कारण हुए हैं। पर.जब देखता हूँ········जब देख रहा हूँ, मेरा ही परिवार इन के अपमान में विदेश की नकल कर रहा है, तो

अपने आप से घृणा हो जाती हैं । अपनी जिन्दगी एक खोट दिखाई देने लगती है ।

बलवंत—यह खरी ही कब थी मौसा जी ? खरेपन का हवाई-महल तो शुरू से ही चकना चूर हो चुका ।

उपकार—नहीं—वह उमर भर कायम रहेगा ।

बलवंत—(रोष से) उसके गिरने के निशान वह शानदार शामयाने हैं जो आपने बाहर लगवाए हुए हैं । जमीन पर बिछे सैंकड़ों कालीन और सैंकड़ों सोफ़े हैं । आपका यह शानदार बंगला है । इसका विलास भरा सामान है । क्या कुछ नहीं है ? घरों में महाराजों जैसी शान । लोगों को दिखाने के लिए खादी और सादगी के ढोंग ! मैं पूछता हूँ यह खोट के निशान नहीं तो क्या हैं ? आप लोगों में दहेज के विरुद्ध प्रचार करने वाले धर्मात्मां और सीधे-साधे प्राणी हो । पर लड़की की सगाई पर हजारों रुपये पानी की तरह बहाने वाले क्या हो ? क्या यह सादगी का ढोंग बगुले के सफेद परों जैसा साफ दिखाई नहीं देता ? जिस ढोंग में झूठ, फ़रेब, अहंकार और लालच की जान लेवा हिंसा छिपी है । मैं कहता हूँ त्याग दो इस सादगी भरे ढोंग को । कम से कम एक इन्सान के स्वाभाविक रूप में आ जाओ । चाहे वह रूप कितना भी भयानक हो । वह रूप कम से कम यथार्थक तो हो ।

(कुछ देर तक मौनता रहती है)

उपकार—(शांत आवाज़ से) हां—मैं क्या हूँ ? मैं पूछता हूँ क्या वास्तव में मैं यही हूँ ? पर नहीं । मैं यह कुछ हर्गिज़ नहीं हूँ ? मेरी अनन्त सहनशीलता इस का प्रमाण हैं । (मुस्करा कर) नहीं तो इस बेबाक लड़के को यहां से निकाल कर बाहर कर देता । पर मेरे लिए सहनशीलता और अहिंसा पर्मोधर्म है । समाजवादी नियमों पर चलना और आर्थिक भेद-भावों पर ध्यान न देना—यही मेरे आदर्श हैं ! जाओ·········अब ऐसी बेहूदगी यहाँ नहीं चलेगी ।जाओ यहाँ से ।

(नाच के भागी हँसते हुए चले जाते हैं । प्रबोध आता है)

प्रबोध—सर—कुछ लोग आपकी बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

उपकार—(बैठ कर) कौन हैं ?

प्रबोध—कुछ तो मजदूरों के नेता हैं। वही जिनकी भूख हड़ताल दो महीने पहले आपने छुड़ा दी थी।

उपकार—(याद करता सा) हां हां—छुड़ा दी थी। उनका भला ही किया था। पर अब क्या चाहते हैं ?

प्रबोध—सर—कहते है वचन याद दिलाने आए हैं !

उपकार—कैसा वचन ?

प्रबोध—कहते हैं दो महीने हो गये। न आयोग नियुक्त हुआ। न उनकी मांगों पर ग़ौर हुआ ! (कुछ देर का मौन)

बलवंत—(हँसी में) कहना था बेसबर क्यों बनते हो ! हमारे नेता अपने सांस्कृतिक आदर्श कैसे भूल सकते हैं ? प्राण जाए पर वचन न जाये ! कुछ ऐसे ही हैं। है न मौसा जी ?

उपकार—बलवंत तू बेकार की बातें करने से क्यों बाज नहीं आता ? दीवान साहब ! कुछ आप भी कहिए न ?

महाराज—मैंने पहले भी अर्ज़ किया था। कमीशन के अमले पर ही पांच लाख रुपये खर्च आते हैं। साथ ही कमीशनों की रिपोर्टें आम तौर पर सरकार के लिए सरदर्दी बन जाती हैं।

उपकार—पर हमारा वचन ? उसका क्या बना ?

महाराज—पर जब सचिवालय में इस पर न चला जा सके तो दोष हम लोगों का हुआ। हमारे दोषों और हमारी कमियों का दायित्व आप अपने ऊपर क्यों लें ? आप राजनीतिक बातचीत से उन्हें समझा सकते हैं। फिर इलैक्शनों से पहले कोई भी नई योजना चालू कैसे हो सकती है ? बड़ी बात तो इस इलैक्शन की है।

उपकार—इलैक्शन !—(चौंकता सा) ओहो—हो। हां भाई प्यारे ! तुम समझा क्यों नहीं देते ? कह दो !—कुछ भी कह दो। कुछ भी ! हां हां ! कहना कैबिनिट में यह समस्या बराबर पेश हो रही है। और—और किसी भले से जज को इसके लिए मना रहे हैं। यह काम जल्दी

ही शुरू हो जाएगा । कहना, आखिर सरकारी काम है कुछ तो देर लगेगी ही ! और कहना मैं इस कोशिश में भी हूँ कि उनकी मागें यूँ ही मान ली जाएं । हो सकता है इलैक्शन के कारण थोड़ी देर हो जाए । इलैक्शन होते ही यह बात निपट जाएगी !

प्रबोध—सर—यह सब आप कहें तो वे बहुत प्रसन्न हों ।

उपकार—नहीं नहीं तुम्हीं समझा दो । हैं ? ठीक ठीक ! बल्कि यह भी कहना, मैं उन्हें मिल में जल्दी ही मिलने आऊँगा । वहां सारी बात भी समझा दूँगा । क्योंकि मैंने वोटों के लिए भी उनकी सहायता लेनी है । एक जरूरतमंद सेवक के नाते ही । समझा ?

प्रबोध—जी हां ! पर अगर वे न समझें ?

उपकार—न समझें तो और भी समझाते रहना ! आखिर मनुष्य हैं । जब एक बात कई बार सुनेंगे तो आखिर समझ जाएंगे !

प्रबोध—बहुत अच्छा सर । मैं ऐसे ही कर देखता हूँ । पर सर—कुछ लड़के, हैं । वे बड़ी ज़िद कर रहे हैं । बड़े अल्हड़ हैं सारे । मिलने आये हैं ।

उपकार—कैसे लड़के ! कौन से लड़के ! उन्हें कौन सी अक़्ल होती है जो हमें मिलें ?

प्रबोध—जी—पर वे कालेजें के लड़के हैं । जो अक़्ल के सम्बन्ध में अपने आप को महारथी समझते हैं । कई तरह की धमकियाँ भी देते हैं ।

उपकार—बेहद शैतान होते हैं । यह कालेजों के लड़के एक समस्या बने हुए हैं । यह समस्या देश भर में नहीं सुलझती । वास्तव में इन के अध्यापक ठीक पढ़ाई नहीं कराते । कुछ तो शिक्षा प्रणाली में सुधार नहीं लाया जा सका । तभी इन के दिमाग़ सुधर नहीं सके । (कुछ सोचकर) हां—मैं समझता हूँ एक पेम्फ़लेट तैयार होना चाहिए । उसमें महात्मा गांधी और दूसरे बड़े नेताओं के शिक्षा सम्बन्धी विचार दिये जाएं । ताकि अध्यापकों और विधार्थियों का हम नैतिक सुधार कर सकें ! कैसा रहे दीवान साहब !

महाराज—जी हां—इस पर दस पाँच हज़ार खर्च हो सकते हैं ।

उपकार—(खुशी से) फिर कल से ही इस काम को शुरू कराओ ।

किसी लेखक-वेखक को चार-पांच सौ दो। और ऐसा मैटर संकलित कराओ।

प्रबोध—सर—पर अब ? अब क्या करना है ? कहते हैं मिले बिना वापस नहीं जाना। बड़े अक्खड़ किस्म के लगते हैं।

उपकार—हां—होते तो बड़े ऐसे ही हैं यह लड़के। (कुछ सोच कर) यह विद्यार्थियों का वर्ग बड़ी ही भयानक चीज़ है। इलैक्शनों के दिनों में तो इन की दुश्मनी विशेषकर हानिकारक है। और मित्रता ? मित्रता लाभ दायक मानी जाती है। (मुस्करा कर) हम इन्हें मिलेंगे प्रबोध

प्रबोध—जी—तो भेज दूं ?

उपकार—(मुस्करा कर) पर हम प्रतिद्वन्द्वी से जब सज्जनता से मिलते हैं तो वह एक दम सज्जन बन जाता है। गांधीवाद की यही तो महानता है। सत्य और अहिंसा से दुश्मन को भी आसानी से जीता जा सकता है। उसी कसौटी पर हमने समाजवाद को भी अहिंसावादी बना लिया है। (सोचता हुआ टहलता है और फिर संतोष से हाथ पर हाथ मारते हुए) मेरा विचार है इस फ़ँकशन की कई चीजें बच गई हैं। जैसे पकौड़े, चटनियां, मिठाईयों के टुकड़े। और—और बोतलें कोके कोके की।

प्रबोध—जी हाँ ! ऐसी कई बची-खची चीज़ें बिखरी पड़ी हैं जी !

उपकार—उन सभी को यहीं इकट्ठी कर दो। और करीने से सजा कर मेज़ पर लगा दो। लड़कों को भी बुला लाओ। हम अपनी रीति के अनुसार पहले उन की आवभगत करना चाहते हैं। क्यों महाराज कृष्ण जी ! (हंसते हुए उसका हाथ पकड़ कर प्रस्थान) (केवल कृष्ण आता है)

प्रबोध—(प्रभावित सा) साहब बेहद प्रतिभा के मालिक हैं। इतनी तेजी से सोचते हैं कि आ र हैरान रह जाए। और इस कदर सुलझे हुए दिमाग के आ:मी हैं कि क्या कहने—(प्रस्थान)

बलवंत—(मुस्करा कर) मैं तो किसी जोकर की बातें सुनूं तो उस को प्रतिभा की प्रसंशा करे बिना नहीं रहता। पर यह तो मेरी ओछी बुद्धि का प्रमाण हुआ न ! खैर—यहां किसको किसकी पहचान है। और कितनी पहचान है। इस पर कितने ही मत हो सकते हैं। यह शो भी मनोरंजक हो

सकता है। है न केवल जी ?

केवल—हां—हां ? पर बाहर एक सांप का तमाशा भी हो रहा है।

बलवंत—(व्यंग से) मैं मनुष्यी शकलों के सांप देखता हूँ। उनके काटे हुए लंगड़े और अपाहिज हो जाते हैं।

केवल—बड़ी अजीब बात है। अच्छा—अभी तो बाहर का तमाशा ही देखें। (प्रस्थान) (प्रबोध बैरों के साथ चीजें लिए आता है और सभी उन्हें मेज़ पर टिकाने लगते हैं)

प्रबोध—जो मिला उपस्थित कर दिया। मुझे विश्वास है लड़के प्रसन्न हो जायेंगे। क्यों कि आम तौर पर नेताओं के घरों में कोई पानी भी नहीं पूछता।

बलवंत—पानी पूछने की किसको फ़ुरसत है ! ख़ैर उन की खुशी से हमें भी खुशी ही होगी। तुम भेजो, इन्हें हम टिकाए देते हैं।

प्रबोध—लो, मैं भेजता हूँ। (बैरों के साथ प्रस्थान।) (प्लेटें इधर उधर करके किन्हीं के पदचाप सुन कर बलवंत परदे के पीछे हो जाता है। पांच युवक प्रवेश करते हैं)

पहला—अबे अन्दर तो कोई भी नहीं। लगता है हम भीतर चले आए वराण्डे में बैठना चाहिए था।

दूसरा—पी० ए० यहीं आने को जो कह गया। बड़े लोग जरा सोच साच कर आते हैं। मंत्री साहब अभी आ जायेंगें। तब तक यार लोग शान से विराज जाते हैं। (शान से ही बैठता है)

पहला—(बैठता हुआ) हां—जल्दी भी कौन सी है। बड़े लोग प्रतीक्षा तो कराया ही करते हैं। (मिठाईयां देखता हुआ खड़ा हो जाता है) यार, लगता है गैस्ट अभी आने बाकी हैं।

दूसरा—(उठ कर शरारत से प्लेट सूंघ कर) स्वादिष्ट लगती हैं यारो।

तीसरा—(उत्तेजना से खाता हुआ) ठीक एक नम्बरी मिठाई है। अरे ! कोई देखता थोड़ा है ? हम भी तो अतिथि हैं।

सभी—(एक दूसरे को देख सहमति में सर हिला कर) हां हां ! कम

से कम हम भी तो अतिथि हैं। (खाने लगते हैं)

चौथा—(मुँह को भर कर) मज़ा आ गया यार। (जेब भी भरने लगता है)

पांचवां—अबे तू तो हद करने लगा। (तेजी से खाता है)

चौथा—हद कैसी ? तू मुँह पीछे कर ले अगर देख नहीं सकता तो।

पांचवाँ—क्यों करूँ मुँह पीछे ? मैं क्यों न लाभ उठाऊँ ? कोई वेवकूफ़ समझता है मुझे ? (खाता भी है और जेब भी भरने लगता है। अन्य भी ऐसा करना शुरू करते हैं)

पहला—मूर्ख जनों। अगर मंत्री जी ऊपर से आ निकले तो ?

दूसरा—कैद करा लें कैद ! जैसे हम डरने वालों में हैं। लो यह वापस ही ले लो। (जेब खाली करने लगता है)

तीसरा—धत्त तेरे की ! (शेखी में) बड़े डरने लगे हैं जैसे। वाईस चांसलर को नहीं भगा दिया ? पुलिस डरती सामने नहीं होती। यारो। सरकार की सरकार डरा ली। टैस्टों में खुल्लम खुल्ला नकलें मारते हैं। स्कूलों से ही यूँ गाड़ी चलानी सीखी हुई है। न कोई पढ़ाता है आज कल, न कोई पढ़ता है। यूँ तो पूरा राम राज है मेरे यारो। फिर क्यों न फर्रे चलाएं ? कोई पैदा नहीं हुआ हमें रोकने वाला ! बताओ क्या है कोई पैदा हुआ रोकने वाला अभी तक ?

दूसरे—(एक आवाज़ में) हां हां। कोई नही जन्मा रोकने वाला अभी तक !

चौथा—(कोके और फ़ैंटे की दो वोतलें खोलता है, जिन्हें बारी-बारी पीता हुआ) यारो उन्होंने पूछा क्या चाहते हो तो क्या कहना है ? इस बात का फ़ैसला अभी से कर लो। बाद में उलझन नहीं होनी चाहिए।

दूसरा—सस्ते सिनेमे ! सस्ती बसें। टैस्टों में खुले नम्बर। और नौकरियां मिलने की पक्की गारंटी ! बड़ी मांगें तो यहीं हैं। (दो दो वोतलें पीने लगता है।) तीसरा, दराज खोलता है तो व्हिस्की की वोतल देखकर उछल पड़ता है)

तीसरा—(बड़ी उत्तेजना से) वाह भाई वाह ! क्या कहने भाई क्या कहने ! लोगों के लिए नशाबंदी और अपने लिए अंग्रेज़ी शराबें ! हमारे गांव की कच्ची निकली शराब पर भी सरकार प्रतिबंध लगाती है। (कुछ घूंट भरता हैं । अन्य भी उत्तेजना में वारी वारी घूंट भरते जाते है) ।

चौथा—(अंतिम घूंट खत्म करके बोतल फ़र्श पर पटका देता है जो टूट कर बिखर जाती है) सुअरो ! इतनी ही छोड़नी थी मेरे लिए ?

पहला—(कोके की बोतलें अंधा धुंध फ़र्श पर फ़ैंकता हुआ) भागो यारो ! जल्दी से चलो। नहीं तो पकड़े जाओगे। भागो भागो—

अन्य सभी—निशानियां छोड़ते चलो ! निशानियां ! (जो हाथ में हैं तोड़ते और फैंकते हुए) भागो ! कैद हो जाओगे । भागो—पुत्रो— (सभी तेज़ी से निकल जाते हैं) ।

(बलवंत प्रवेश करता है)

बलवंत—चलो ! भ्रम हट तो गये । (एक ब्रुश से जगह साफ करने लगता है) एक नियंत्रणहीन समाज। जिस का हर अंग अपने आप में प्रधान । अंगों की दिशा हीन चाल ! कोई गंदगी फैलाए। कोई कुरूपता पैदा कर दें ! कोई तोड़ दे। तो कोई राहें रोक कर खड़ा हो रहे। और कोई स्वार्थ में मस्त यह सब देख कर भी अनदेखा कर दे—आह—

एक बड़ी थी मां ग़रीबन,
थे उस के चारों लाल।
उस की थी आस अभागिन,
कर देंगे उस को निहाल।
पर जब हुए मर्द वे सारे,
करें बातें वारे न्यारे,
कोई बात भी रास न आए,
उस अभागिन के वही थे प्यारे !

(नौकर आता है तो उस के हाथ से ब्रुश ले कर सफाई करने लगता है।)

जब पूत हुए और जवान,
करें वे बातें बहुत महान,
किसी बात पे आस न दीखे
करने लगे जब उलटे सीधे
उस गरीबन के फूटे भाग।
जो बात वे करते, न उस पे चलते,
करन कहन के फ़र्क अपार।

(महाराज और राम उपकार का प्रवेश। दोनों उस उथल पुथल को मौनता भरी हैरानी से देखते हैं)

उपकार—(उदासी में कमरे का चक्कर लगा कर) मैं तो देख भी न पाया। क्या चले भी गये?

बलवंत—लगता है चले गए हैं!

उपकार—पर मुझे कुछ कहे बिना क्यों चले गये हैं?

बलवंत—उन्हें शायद कुछ कहने की जरूरत नहीं थी।

उपकार—पर वे ज़िद कर के आए थे।

बलवंत—हो सकता है उन के यहां कहने को कुछ न हो। यह सब तोड़ देना। जो चल रहा है उसे अटका कर रोक देना, क्योंकि इस से वे असंतुष्ट हैं। और—और यह सब बिगाड़ कर भाग जाना, मेरा विचार है अभी यही है जो वे सीखे हैं।

महाराज—धिक्कार है इन सब पर! क्या यही पढ़ते हैं?

बलवंत—हां यही! बिल्कुल यही पढ़ रहे हैं। क्योंकि पढ़ाने वाले भी यही कुछ करते हैं। किसी न किसी रूप में।

उपकार—नहीं नहीं! मैं यह नहीं मानता।

बलवंत—रीतियों, रिवाजों, के बंधन में बंधी चेतना क्या कभी ठीक और ग़लत को पहचान सकती है? जिस को पुराने संस्कारों ने अंधा कर दिया हो! आज यह व्यवस्था पुरातनता को पकड़े नई होने का ढोंग रचाती है। नयी चेतना का तिरस्कार करती है। (खिड़की के पास जाकर)

अजी—विज्ञान को अंधे विश्वास की लगाम से बांध लो । तबदीली का गला परम्परा की रस्सी से दबा दो । समाज को भ्रष्टाचार से भर दो क्योंकि इस को हटाने की जगह इस में पनपना पसंद करते हो । इस को हटाना यूँ भी आप के बस में नहीं है । तब देखो, जो देख रहे हो ! (गुनगुनाता हुआ) एक बड़ी थी मां गरीबन ! उस के थे चारों लाल—

(प्रस्थान)

महाराज—कुछ आयी समझ क्या कह गया है ? (हंसता हुआ) हा ! हा ! यह लड़का बेहद दरजे का बदतमीज़ है ! हैरान हूँ आप इसे इतना झेल कैसे लेते हो ।

उपकार—(टहलता हुआ) हां झेल लेता हूँ । कई बार हैरान रह जाता हूँ । पर मुझे बुरा नहीं लगता । बस बेबाक और निकम्मा सा है । पर मैं भी—मैं भी इसी तरह कभी कुछ नहीं होता था । तब लोफ़र और आवारा ही समझा जाता था ।

महाराज—(व्यंग से) आप अपना अतीत नहीं भूलते ? हा हा हा ।

उपकार—हां—इसी लिए इसे ठोकर मार कर घर से बाहर नहीं निकाल सका । कुछ इस तरह है । इस तरह है, जैसे इस की आवाज़ अंतःकरण की आवाज़ हो । जिसे सुनो न सुनो, जिसे मानो न मानो, तुम्हारी व्यक्तिगत बात है ।

महाराज—मेरा बस चले तो कान पकड़ कर बाहर कर दूँ । नो नानसैंस ! (महिंदर और केवल आते हैं)

महिंदर—(हैरानी से) यह सब क्या है ? यह तोड़ फोड़ ।

केवल—ए केस आफ़ ए बुल इन ए चाईना शाप ! कोई भूत थे कि शैतान थे अंकल । यह लड़के ।

उपकार—कुछ भी हों ! पर बिल्कुल तुम्हारी तरह तुम्हारे ही साथी थे । (बैठ कर) आज पुराने समय बीतते जा रहे हैं । वह दिन ! जब उमरें सनमानी जाती थीं । सफ़ेद बाल श्रद्धांजली के फूल स्वीकार करते थे । नया समय ठोकरें मार मार इन निशानों को खत्म कर रहा है । हमारे सम्मानों को

मट्टी में रौंद रहा हैं। और शायद वह ठोकरें तुम्हीं—(उनकी ओर उंगली से संकेत करके) तुम्हीं मार रहे हो। हमारे उपकार—आह उपकार! अगर यह कहने योग्य भी हम रह गये हों! उन्हें तुम घृणा से देखते हो। हमारी जगह बड़ी बेसबरी से लेने को तुम तैयार हो चुके हो।

महिंदर—(हंसी से) हा हा हा! आप बिल्कुल गलत कह रहे हैं।

केवल—हां—बिल्कुल गलत अंकल जी। हम आप की छत्र छाया में —

उपकार—(टोक कर) बढ़ने की व्यवस्था के चाह-वान हो। इस छत्र छाया को एक सहारा समझ कर। क्यों कि यह तुम पा जो सके हो। और इस से तुम मनमानी करने को तैयार रहते हो। इसे अपवित्र समझ, इसे दुराचार का पात्र बना कर। (कुछ मौन रह कर) यही—यही कारण है, हम हर किसी की घृणा सहते हैं। इस परिवार परवरी के कारण ही। वक़्त की घृणा, अंतःकरण की घृणा। जनता की भी घृणा! क्योंकि हम अपने आप में सच्चे नहीं रह सके।

महिंदर—आप बिल्कुल ग़लत हैं। आप की आदत है अपने आप को एक पैडस्टल पे रख लेते हो।

उपकार—(उठ कर टहलता हुआ) मैं—मैं सोचता हूँ। इन सभी झमेलों से हाथ धो कर हट जाऊँ। मंत्री पद को त्याग कर राजसी क्षेत्र से भी हट जाऊँ। और—और जिन्दगी के बचे समय को दयानतदारी से गुज़ार दूं।

महिंदर—ताकि आपके दुश्मन खुशियों भरे बाजे बजा सकें।

उपकार—बजा लें। (बैठकर) मेरे राजसी सन्यास से देखता हूँ किसको खुशी होती है। किस को कितना लाभ होता है। आख़िर हर किसीने एक दिन जिन्दगी से सन्यास लेना ही लेना है। किसी ने मर कर, किसी ने जी कर। एक जी कर लेना ही मुश्किल और महान है। (गर्व से) जो मैं ले सकूंगा। मैं!

महाराज—(हंस कर) हा हा हा! लगता है यह कोई नया मूड है जो सताने लगा। क्या कुछ पीओगे नहीं? आप का मूड बदल जाए गा!

उपकार—यह मूड नहीं दीवान साहब। मेरे अंतःकरण की ज़बरदस्त

माँग है जो देर से मेरे मन में उठ रही है। (उठ कर घूमते हुए) फिर कौन झूठे वायदे करता, लोगों के पास वोटें मांगने जाए ? कोई कितना रुपया वरबाद करता रहे। मेरे पास कोई धन नहीं वरवाद करने को ! मेरा तो कैश वैलेंस ही कोई नहीं।

महिंदर—पर मेरे पास तो है। मेरा सारा रुपया आप का ही तो है। उसे बेशक खर्च कीजिये इलैक्शन जीतिये और मंत्री मण्डल बनाइये। यह सारे का सारा वापस आ जाएगा। बल्कि वहुत सा साथ खींच लाएगा।

उपकार—(गर्व से उस के कंधे थाम कर) अरे नहीं बेटा। मैंने क्या लेना है ? मैंने तो बस देना ही देना हैं ? परिवार को। समाज को। देश को—जनता को। हर किसी को। (हंसता है) हा हा हा—

(प्रवोध आता है)

प्रबोध—सर, इलैक्शन कमेटी के प्रधान और सचिव आए हैं।

उपकार—ओह—हां हां। (उत्तेजना से) यहीं भेज दो। सुवह फ़ोन पर समय ले चुके हैं। दीवान जी ! पिछले दरवाजे पर मैंने आप की कार खड़ी करा रखी है। अगर कुछ देर और ठहर लो तो ठीक हो। मैं जल्दी खाली हो जाऊँगा।

महाराज—(उठकर) अच्छी बात है। आ केवल ! (दोनों का प्रस्थान)

महिंदर— कुछ खाने पीने को रखवा दूं ?

उपकार—हां—दो शीशे के गिलास। जग में ठण्डा पानी। और एक प्लेट में सादे विस्कुट। यही ठीक रहें गे। इस सादगी के नाते ! प्रवोध ! भेज दे उन्हें। (प्रबोध जाता है) मैं इलैक्शन के सम्बन्ध में सोचना भी नहीं चाहता। इस सोच ने तो जैसे बदहज़मी सी कर दी हो। पर यह लोग बुरी तरह पीछे पड़ गये हैं।

महिंदर—(सब रख-रखा कर) यूं नर्वस न हुआ करें। छोटी सी बात है। (प्रस्थान)

(दो—आदमी प्रवेश करते हैं। प्रधान ऊँचे कद का रोब दाब का व्यक्ति है। सचिव नाटे कद के मोटे और श्याम रंग के ऐसे प्राणी हैं जिन के

चेहरे पर शराफ़त और मक्कारी के सम्मिलित से अंश हैं)

उपकार—(उन से हाथ मिलाता हुआ) आइये—आइये। देर से आए।

सचिव—जरा झिझक में पड़ गये थे। डर था कहीं रुसवाई न हो जाए। (शरारत भरी हंसी) आप के महाराजों जैसे प्रताप हैं। जिन की चर्चा यार लोग करते थकने में नहीं आते। और हम हैं साधारण जन! इस ठाठ से घबरा जाते हैं। (हंसी में) हा हा हा! धन्यवाद जो आपने इस स्वागत से इज़्ज़त रख ली हमारी।

प्रधान—(मुस्करा कर) हुज़ूर—हमारी भी हाज़री लेखे लगा लेनी। बड़ी दूर से चल कर आए हैं।

उपकार—(हंस कर) हां हां। कार में बैठ कर आए हैं। फिर कार से उतर कर दरवाज़े तक आने का फ़ासला पांच छः मीटरों का फ़ासला है। दूसरों के भाग्य के फ़ैसले करने वाले महारथियों के लिए यह फ़ासले भी लम्बे होते हैं। (उसके संकेत पर सभी बैठ जाते हैं) बाकी दास एहसानमंद है, क्योंकि आप की नज़रें हम पर अच्छी हैं। आप हमारे कृपानिधान हो। हमारी कमियों पर ध्यान कम देते हो।

सचिव—इन शब्दों से आप लज्जित करते हैं। अजी कहां कीड़ी और कहाँ नारायण! आपके सम्मान में हमारी तो आँखें झुकी जाती हैं।

प्रधान—वास्तव में हम यह सारा इलैक्शन आप की सहायता और निगरानी के बिना लड़ना पसन्द नहीं करेंगे।

उपकार—(गर्व से) मैं एक-एक सीट अपनी निजी समझ कर लड़ूंगा। फिर ऐसी स्थिति में कोई कसर छोड़नी तो पाप जितना दोष होगा!

सचिव—(गदगद सा) आप हर दृष्टि से महान हैं लाला जी, बलिदान करना और बलिदान करा सकना, यह आपके सब से बड़े गुण हैं।

उपकार—क्योंकि हर नेता की पहचान इस तरह की योग्यता पर ही होती है। पर मेरी सेवा की इतनी प्रशंसा क्यों हो रही है?

प्रधान—इस विश्वास पर कि आप प्रांत की पार्टी के लिए ही नहीं

बल्कि देश के लिए भी एक बहुत बड़ी मिसाल पैदा करेंगे।

सचिव—जी हां। बलिदान करने के भी अवसर होते हैं। जो ले सकता है, वही महान बन जाता है।

उपकार— हां हां—हमारी सेवाएँ हाज़िर हैं! कहिए!

प्रधान—क्या यह बात उस मिसाल की शुरुआत न हो जाए अगर आप एक वक्तव्य दे दें कि आप का पार्टी को इलैक्शन में जिताना मुख्य उद्देश्य है। आप इलैक्शन के लिए खड़े होना भी जरूरी नहीं समझते। क्योंकि हर तरह के निजी हितों को त्याग कर पार्टी को ताकतवर बनाना ही अपना उद्देश्य बना चुके हो।

उपकार—(हैरानी से)—मैं बिल्कुल नहीं समझा। यह वक्तव्य देने की जरूरत कहाँ से आ पड़ी।

सचिव—(गम्भीरता से) क्योंकि यह इलैक्शन पहले से कहीं अधिक कठिन हो रहा है। पार्टी के कुछ सदस्यों के लिए।

उपकार—(उत्तेजित होकर) हां—कठिन हो रहा है। विशेषकर हर उस निकम्मे सदस्य के लिए जो जनता में असफ़ल है। जिस का कोई प्रभाव ही नहीं बना। पर कोई मेरे सम्बन्ध में ऐसी बात सोच भी कैसे सकता है?

प्रधान—वास्तव में हम आपके सम्बन्ध में नहीं कहते। आप पार्टी के बड़े बुज़ुर्ग जो ठहरे। एक ऐसे गुरू हो जिसकी प्रतिष्ठा और बलिदान से पार्टी में नई जान आ सकती है।

सचिव—हम आप से कुछ ऐसे ही बलिदान की आशा करते हैं। एक बुज़ुर्ग के नाते।

उपकार—(व्यंग से) मैं समझता हूँ आल इण्डिया कान्फ्रेन्स में यह मत रखो कि हर बुज़ुर्ग को जिसका प्रभाव जनता में बढ़ चुका है उसे नाकारा करके घर में बन्द किया जाए। ताकि बेअसर जवान रसूख और ताकत हासिल कर सकें।

सचिव—क्षमा करना। यह किसी व्यक्ति के लिए नहीं केवल पार्टी के लिए है। यह मत रखने के लिए भी नहीं, बल्कि अमल करने के

लिए है । आप पार्टी पर बहुत बड़ा उपकार करोगे । अगर यह बलिदान दे सकोगे ।

उपकार—(रोष से) तुम्हें क्या मैं ही कुरबानी का बकरा नज़र आया हूँ ?

प्रधान—क्षमा करें । पर हमारे इस फ़ैसले को इस रंग में क्यों लेते हैं आप ? हां—इसके बदले राज्य सभा का टिकट हम दिला देंगे ।

उपकार—(तिलमिलाते हुए खड़े होकर) सो तुमने फ़ैसला पहले ही कर रखा है ? मुझे पूछने की जरूरत भी नहीं समझी ? यह हिम्मत भी तुम कैसे कर सके ?

प्रधान—(विनिम्रता से) हिम्मत नहीं लाला जी ! क्योंकि आपके बेटे के सम्बन्ध जो लोगों में राए बन चुकी है ?

उपकार—(साश्चर्य सामने बैठ कर) वह सब झूठ है : तुम्हें ऐसी बातें सुनने को भी तैयार नहीं होना चाहिए । कई लोग किसी की सफ़लता पर जलने लगते हैं । पर इसका यह अर्थ नहीं कि आदमी सफ़ल होना छोड़ दे ?

सचिव—कई एक बातें लोगों की ज़बान पर चढ़ जाती हैं । फिर जैसे समाचार पत्र में आज की फ़ंकशन का छपा है—

उपकार—(उत्तेजना से) वह मेरे दुश्मनों का मुझ पर आघात है । जिस पर मेरे दुश्मन ही ध्यान दे सकते हैं ।

प्रधान—क्या यह भी ग़लत है कि आपका लड़का लखपति बन गया हैं ? आपने कई एक ठेके, परमिट और लाइसेन्स दिला दिये हैं ?

उपकार—उसकी योग्यता ने दिलाए हैं । मैंने कहां दिलाने थे ?

सचिव—खैर कमेटी आपको केवल राज्यसभा की जगह ही दिला सकती है । वह भी तब अगर आप कोई विशेष सेवा करके दिखाओ—

उपकार—(हत प्रभ सा) फिर मिनिस्ट्री में कैसे !—

प्रधान—(हँस कर) हा हा हा ! मंत्री बन गए तो आपका बलिदान किस लेखे होगा ? कहने और करने का कुछ तो मेल हो ! वैसे

राज्य सभा की सदस्यता से भी अपना अधिकार छोड़ दो तो आप का सम्मान बेहद बढ़ जाए।

उपकार---(क्रोध में चिल्लाते हुए) निकल जाओ---निकलो मेरे घर से। मैं तुम्हें देखना भी नहीं चाहता।

(वह दोनों परेशानी में खड़े हो जाते हैं)

सचिव---हद कर दी! क्या यही है आपकी बुज़ुर्गी? आप तो ज़बान पर भी काबू नहीं रखते!

उपकार---(हाथ हवा में मारता हुआ) निकल जाओ। हमारे टुकड़ों पर पलने वाले बदतमीज गुण्डो! क्या समझते हो हमें? क्या मैं तुम्हारी नाकारा टिकट के बिना इलैक्शन नहीं लड़ सकूंगा? ज़रूर लड़ूंगा। अपनी पार्टी बनाऊँगा। अपना मंत्री मण्डल भी बना सकूंगा।

दोनों---कमाल है! --- हद है! कमाल कर दिया इस लालच ने। वाह!

उपकार---(चिल्लाते हुए) निकल जाओ---निकलो यहां से।
(दोनों बोलते बोलते तेज़ी से बाहर चले जाते हैं। महिंदर और मीनाक्षी आते हैं। पर वह "निकल जाओ। निकल जाओ" कहे जाते हैं)।

महिंदर---(साशचर्य) ओह---क्या हुआ है? वह तेज़ी से भाग गये हैं। और आप क्रोध पर काबू नहीं पा रहे! बात क्या है?

उपकार---(सम्भलता सा) कुछ नहीं---मैं---मैंने यह जान, कि ठुकरा कर निकाल दिये। (बलवंत आता है)

बलवंत---बड़ा शोर था। कुछ इस तरह जैसे भूचाल आ गया हो! आप की आवाज़ में घबराहट थी। बेहद क्रोध था। वह इज़्ज़त को छिपाते तेज़ी से भागे जा रहे थे। यह सब हुआ कैसे?

उपकार---(हांफ़ता हुआ) मैं---मैंने समझो उन्हें निकाल दिया। जैसे मुझे भिखारी समझते हों। टुकड़े डाल रहे थे। टुकड़े! जैसे कोई किसी कुत्ते को डालने लगे। मेरे पांवों में रुलते यईं यईं करने वाले यह

नाकारा से लोग मुझे टिकट नहीं देते। जैसे मैं इन की टिकटों का मोहताज़ हूँ ! मतलब—तुम राजनीति से रिटायर हो जाओ। मतलब सब छोड़ छाड़ दो।

मंहिदर—(सदमें से) ओह—और मंत्री पद भी छोड़ दो ?

उपकार—(बुझे से दिल से) हां—यही तो इन्हें खटकता है। और तुम पर दोष लगाते थे। कि तू लखपति—तू करोड़पति बन रहा है। राजरानी की सगाई की फ़ँकशन पर जलते हैं। मैं इन सब को समझ लू, अगर मेरा दिल हो।

मंहिदर—दिल क्यों नही ? यह आप के ही नही, मेरे भी दुश्मन हैं। अब सब कुछ बचाने के लिए भी आप का ताकत में रहना ज़रूरी हो गया है।

उपकार—पर पैसे ? रुपये ? पार्टी ? वह पार्टी अब कहां देगी ? हज़ारों रुपये ! लाखों भी।

मंहिदर—मैं दूंगा। नई पार्टी बनाओ। इस पार्टी में रखा ही क्या है ? इसे लोग समझते ही नहीं आज कल।

उपकार—(डूबती सी आशा में) हां—हां ! यही अगर तू भी समझता है ! दीवान जी से बात करता हूँ। दीवान जी से— (प्रस्थान)

मंहिदर—है न बलवंत हद हो गई ? इन्हें पार्टी बनाने में तुम भी सहायता करो ! तुम भी बहुत कुछ कर सकते हो।

बलवंत—(मुस्करा कर) मेरी सहायता ! जो अपनी ही सहायता न कर सके। वह दूसरों की क्या करेगा ?

मंहिदर—क्यों नहीं ? बल्कि लकड़ी के साथ लोहा भी तैर जाता है। तुम इन के लिए करो, यह तुम्हारे लिए करेंगे। तुम क्या समझते हो ? मैं यूं ही सफल हो गया ? नहीं—इन की देनों के बदले लोगों ने मुझे दिया। आज कल कोई भी किसी के लिए बिना किसी मतलब के नहीं करता।इसी लिए तो तुझे कोई पूछता भी नहीं !

बलवंत—पर मैं तो यूं ही मिलने के लिए—देखने के लिए चला

आता हूं । ताकि इस व्यवस्था को नज़दीक से समझ सकूं ! (प्रस्थान)

महिंदर—बेहद मोटी अक़ल है इस की ! न उधर न इधर !

मीनाक्षी—पता है क्या कहते हैं ? (हँस कर) ही ही ही ! कहते थे, "हर पार्टी एक दुकान है । हर दुकान का माल नकली और झूठा है । कोई विश्वास के काबिल नहीं ।" पूछिये ! फिर यह कैसे हैं ?

महिंदर—बिल्कुल क्रैंक है मीना जी । नीम पागल है ।

मीनाक्षी—पर लेखक है । जो ऐसे ही होते हैं । (हँसती हैं) हा हा हा । बददिमाग़ !

महिंदर—इसी लिए पिता जी इन लेखकों को वर्ष में एक बार बुला लेते हैं । जैसे बहलाना हो । बस—सभयचारक समागम का बुलावा । सरकारी खर्च पर । और उस समागम या दरबार में इन पर अपने भाषणों का दबदबा डालते हैं !

मीनाक्षी—सभी लेखकों को भाषण ! बड़ी स्मार्टनेस है ! (हँसती है) ही ही ही ।

(केवल और राजरानी आते हैं)

केवल—मैं जा रहा हूँ महिंदर—

महिंदर—अरे—इतनी जल्दी किस बात की है ।

केवल—(खुशी से) मेरा काम हो गया । अंकल ने कहा है वह कल ही मेरी प्रमोशन के आर्डर निकलवा देंगे । इट वाज़ ए पार्ट आफ़ दी बारगेन ! मैं डिप्टी डाइरेक्टर बन जाऊँगा । फिर ! और फिर—(हँसता है) हा हा हा ! है न रानी ?

रानी—पर सोचती हूँ ऐसी हालत में ऐसा क्यों करें ! बल्कि आप को ही उन्हें मना करना चाहिए !

केवल—(गम्भीरता से) तू ने हैरान कर दिया ! क्या तू मेरी प्रोग्रेस नहीं चाहती ?

रानी—पर ठीक हालत में तो होती हो । और स्कैंडल चलेंगे । आज की इतनी बड़ी पार्टी ही ठीक नहीं थी ।

केवल—(व्यंग से) हां—क्यों ठीक हो ! क्योंकि मेरे सम्बन्ध में जो थी। मैं सोचता हूँ—तुम शादी से पहले अगर यह कह सकती हो तो बाद क्या कुछ न कहा करोगी !

रानी—(फीकी मुस्कान से) भला क्या कहूंगी ? आप के हर साहस और दयानतदारी भरे काम को सराहा ही करूँगी। आप को किसी भी स्वार्थ या छोटेपन में पड़ने की जरूरत कौन सी पड़ी है ? आपको भगवान ने क्या नहीं दिया ?

केवल—इसका मतलब है, मैं यह सोच कर एक जगह खड़ा हो जाऊँ। चाहे लोग मुझ से सैंकड़ों मील आगे निकल जाएँ !

रानी—निकल जाएं या पीछे रह जाएं—निर्णय समय करता है।

केवल—हाँ, समय ही करता है ! इसीलिए कहता हूँ, समय की चाल को देखना चाहिए। अपने भाई महिंदर को ही देख। क्या यह कुछ दिनों के अन्दर ही करोड़पति बनने की नहीं सोचता ?

रानी—(उसकी बाँह का सहारा लेती सी) पर केवल जी—आप इस बात को दूसरी तरह क्यों नहीं सोचते ? क्या दयानतदारी और साहस का कोई मोल नही होता ? ज़रूर होता है। साधारण सतह से ऊपर क्यों न उठा जाए ! अगर हम ही दयानतदार नहीं बनेंगे तो किसी की बददयानती पर गिला कैसे करेंगें ? भ्रष्टाचार को कोई कैसे खत्म करेगा ?

मीनाक्षी—(हंसकर) हा हा हा ! डिबेट अजीब सा है। बोर हो रहे हैं। चलें अन्दर ! (महिंदर का हाथ पकड़े प्रस्थान)

केवल—(चिढ़ से) तुम क्या समझती हो ? क्या ऐसा भलामानस बनने की मैंने सौगन्ध खाई हुई है ?

रानी—(लज्जित सी) तो ठीक है ! फिर करें मुकाबले ! अगर कोई लखपति है तो कोई करोड़पति बने। अगर कोई बददियानत है तो कोई डाकू और हत्यारा क्यों न बने !

केवल—हैं न मिर्चें लगतीं ? मैं कहता हूँ अपने नीचे देखना बड़ा

आता हूँ। ताकि इस व्यवस्था को नज़दीक से समझ सकूँ ! (प्रस्थान)

महिंदर—वेहद मोटी अक़्ल है इस की ! न उधर न इधर !

मीनाक्षी—पता है क्या कहते हैं ? (हँस कर) ही ही ही ! कहते थे, "हर पार्टी एक दुकान है। हर दुकान का माल नकली और झूठा है। कोई विश्वास के काबिल नहीं।" पूछिये ! फिर यह कैसे हैं ?

महिंदर—बिल्कुल क्रैंक है मीना जी। नीम पागल है।

मीनाक्षी—पर लेखक है। जो ऐसे ही होते हैं। (हँसती हैं) हा हा हा। बददिमाग !

महिंदर—इसी लिए पिता जी इन लेखकों को वर्ष में एक बार बुला लेते हैं। जैसे बहलाना हो। बस—सभयचारक समागम का बुलावा। सरकारी खर्च पर। और उस समागम या दरबार में इन पर अपने भाषणों का दबदबा डालते हैं !

मीनाक्षी—सभी लेखकों को भाषण ! बड़ी स्मार्टनेस है ! (हँसती हैं) ही ही ही।

(केवल और राजरानी आते हैं)

केवल—मैं जा रहा हूँ महिंदर—

महिंदर—अरे—इतनी जल्दी किस बात की है।

केवल—(खुशी से) मेरा काम हो गया। अंकल ने कहा है वह कल ही मेरी प्रमोशन के आर्डर निकलवा देंगे। इट वाज़ ए पार्ट आफ़ दी बारगेन ! मैं डिप्टी डाइरेक्टर बन जाऊँगा। फिर ! और फिर—(हँसता है) हा हा हा ! है न रानी ?

रानी—पर सोचती हूँ ऐसी हालत में ऐसा क्यों करें ! बल्कि आप को ही उन्हें मना करना चाहिए !

केवल—(गम्भीरता से) तू ने हैरान कर दिया ! क्या तू मेरी प्रोग्रेस नहीं चाहती ?

रानी—पर ठीक हालत में तो होती हो। और स्कैंडल चलेंगे। आज की इतनी बड़ी पार्टी ही ठीक नहीं थी।

केवल—(व्यंग से) हां—क्यों ठीक हो ! क्योंकि मेरे सम्बन्ध में जो थी । मैं सोचता हूँ—तुम शादी से पहले अगर यह कह सकती हो तो बाद क्या कुछ न कहा करोगी !

रानी—(फीकी मुस्कान से) भला क्या कहूंगी ? आप के हर साहस और दयानतदारी भरे काम को सराहा ही करूँगी। आप को किसी भी स्वार्थ या छोटेपन में पड़ने की जरूरत कौन सी पड़ी है ? आपको भगवान ने क्या नहीं दिया ?

केवल—इसका मतलब है, मैं यह सोच कर एक जगह खड़ा हो जाऊँ। चाहे लोग मुझ से सैंकड़ों मील आगे निकल जाएँ !

रानी—निकल जाएं या पीछे रह जाएं—निर्णय समय करता है।

केवल—हाँ, समय ही करता है ! इसीलिए कहता हूँ, समय की चाल को देखना चाहिए। अपने भाई महिंदर को ही देख। क्या यह कुछ दिनों के अन्दर ही करोड़पति बनने की नहीं सोचता ?

रानी—(उसकी बाँह का सहारा लेती सी) पर केवल जी—आप इस बात को दूसरी तरह क्यों नहीं सोचते ? क्या दयानतदारी और साहस का कोई मोल नहीं होता ? ज़रूर होता है। साधारण सतह से ऊपर क्यों न उठा जाए ! अगर हम ही दयानतदार नहीं बनेंगे तो किसी की बददयानती पर गिला कैसे करेंगें ? भ्रष्टाचार को कोई कैसे खत्म करेगा ?

मीनाक्षी—(हंसकर) हा हा हा ! डिबेट अजीब सा है। बोर हो रहे हैं। चलें अन्दर ! (महिंदर का हाथ पकड़े प्रस्थान)

केवल—(चिढ़ से) तुम क्या समझती हो ? क्या ऐसा भलामानस बनने की मैंने सौगन्ध खाई हुई है ?

रानी—(लज्जित सी) तो ठीक है ! फिर करें मुकाबले ! अगर कोई लखपति है तो कोई करोड़पति बने। अगर कोई बददियानत है तो कोई डाकू और हत्यारा क्यों न बने !

केवल—हैं न मिर्चें लगतीं ? मैं कहता हूँ अपने नीचे देखना बड़ा

मुश्किल होता है । अच्छा—मैं जा रहा हूँ ! बायी बायी ।

रानी—बायी बायी—(उसे जाते को मूर्तिवत सी होकर देखती है । बलवंत आता है तो वह काँप सी जाती है) ।

बलवंत—(साश्चर्य) तुम्हारा चेहरा मुरझाया हुआ लगता है । तुम्हारे ओंठ कांप रहे हैं । तुम बेहद उदास लगती हो । ओह ! तुम कितनी निढाल सी हो गई हो ! लगता है तुझे किसी के सहारे की सख्त ज़रूरत है ।

रानी—(उसके कन्धे का सहारा लेकर)—मुझे इस उजाले में अंधेरा क्यों दिखाई देता है ! लगता है जैसे हम परछाईं का पीछा करते हों । परछाइयों के पीछे दौड़ने के खेल में जैसे व्यस्त रहते हों ! जिन्दगी बस इसी खेल को ही मानते हों । इसी में उसे खो देते हों । (बैठ जाती है) ।

बलवंत—जिन्दगी एक भावना है जिसे प्रतीत किया जा सकता है । समझा नहीं जा सकता रानी ! कोई इस में तैरता हुआ इसका आकर्षण खो देता है—

रानी—(चुनौती से) कोई इसका आकर्षण भी मान नहीं सकता ! हैं न वह भी कोई ?

(बलवंत उसको विवशता से देखता नजरें नीची कर लेता है, जैसे वह हार गया हो)

[पर्दा गिरता है]

अंक तीसरा

स्थान वही है । पर दृश्य को समय ने बुरी तरह से बदल दिया है। फ़र्नीचर का निशान नहीं रहा । फ़र्श पर कालीन की जगह एक पुरानी और फटी सी चटाई बिछी है। साथ ही एक चारपाई पर एक मैली और सिलवटों भरी चादर पड़ी है।

रामउपकार मैले तथा साधारण से वस्त्रों में आता है । देखने में ठीक मंलग सा लगता है। वह मौन वहीं टहलने लगता है। दयावंती सादे पहनावे और मुरझाई सी दशा में प्रवेश करती है।

उपकार—(धीमी हंसी हंस कर) हा हा हा। बात याद करके ही मज़ा आ गया। यह छोटा सा चांद देखती हो ?

दयावंती—पता नहीं आप कैसे हंस लेते हो ?

उपकार—क्या याद हैं वह दिन ? शादी के पहले पहले दिन ?

(दयावंती असंतोष से सर मारती है पर वह उसका हाथ पकड़ लेता है)

दयावंती—क्या करते हो ? कैसी बातें सूझती हैं। छोड़ो भी—

उपकार—(हाथ छोड़ कर) लो छोड़ दिया । तुम तो यूं ही घबरा जाती हो। (टहलता और हंसता हुआ) हा हा हा। अजीब सा मज़ा था उन दिनों भागवान ! वह हालत याद हो आई है। यह चांद देख कर। क्योंकि हम हनीमून नाम की कोई अवस्था मना ही नहीं सके। (गम्भीर होकर) और—और शादी के उस संक्षेप हनीमून की तरह इस राजनीति के हनीमून का भी अंत हो गया है। जिन्दगी बांझ हो गई है। खालीपन का एहसास ही बचा रह गया है। समझ में नहीं आता कि क्या कुछ एक दिनों के खातिर ही मनुष्य संघर्ष करता है ! और जल्दी ही वह दिन संध्या के साए की तरह गुज़र जाते हैं। (बैठ जाता है)

दयावंती—(आह भर कर) मैं नहीं कहती थी? घर को फूंक कर इलैक्शन न लड़ो। पर आप—

उपकार—पर मैं हारा हुआ जुवारी था। तुम्हारी बात पर ध्यान न दे सका! (हंस कर) हा हा हा! सियासी लोग बिल्कुल नीमपागल से हैं। हम वास्तविकता को समझे बिना ही खाली बातों के पुलाव बनाने लगते हैं। (महिंदर और बलवंत आकर दीवार के सहारे खड़े हो जाते हैं)

दयावंती—(आंसू पोंछ कर) हाए—पार्टी के लिए आप ने क्यों सब कुछ बरबाद किया! (राम उपकार चारपाई पर बैठ जाता है)

उपकार—क्योंकि हम सपने बाज़ हैं। सपने बेचना हमारा व्यवसाय और कला है। पर हर सपने की तरह यह सब बेबुनियाद होते हैं। इसी लिए पूरे नहीं होते। जिस पर लोग हम से नाराज़ हो जाते हैं।

बलवंत—जब वे देखते हैं कि आप के अपने सपने पूरे हो गये और उन के धूल में जा मिले। केवल तभी—

उपकार—(साशचर्य) पर अपने सपने भी कैसे!

बलवंत—अमीर बनने के। रसूख और ताकत को पा सकने के। कारें कोठियां, पैसे रुपये—यहां तक कि ऐसे वर्ग के अंग बन जाने के जो अपनी ऐसी हैसीयत कुछ पहले से बना चुके हों।

उपकार—हां हां—यह ठीक है। (उठ कर) तूने मुझे महाराज कृष्ण की हैसियत याद दिला दी है। वह अपने आप को बहुत कुछ समझता था। खास कर जब मैं नया ही मंत्री बना था। खैर खानदानी तो था ही। मैंने उसे अपना समधी बनने को मना ही लिया। (हंसता है)

दयावंती—हे भगवान। वह समधी बन ही जाए!

उपकार—क्यों नहीं बनेगा? ज़रूर बनेगा। खानदानी होने की यही तो विशेषता है। (ऊँची सी) रानी—राजरानी! मेरी प्यारी बेटी! मेरी बच्ची। हम रानी का ब्याह जल्दी कर देंगे। (राजरानी आती है जिसे वह स्नेह से पकड़ लेता है) मैं अपनी बच्ची के हाथ अब जल्दी ही पीले कर दूंगा। इस में है ही क्या! सज-धज से नहीं तो क्या है? महाराजकृष्ण

आदमी वचन का पक्का है । यह भी मान लेगा ।

दयावंती—पर वह अमीर है । हम फिर से गरीब हो गये हैं ।

महिंदर—हम कोई कम अमीर हैं ? उन जैसे दसों जितने अमीर !

उपकार—(बौखलाया सा) हम अमीर !—क्यों नहीं ! हां हां—

महिंदर—ज़रा पर्दा पड़ गया है । फिर भी बन सकते हैं !

उपकार—(उसके कंधे का सहारा लेकर) हां—फिर बन जाएंगे । क्या है अगर इलैक्शन हार गया हूँ । अगर पार्टी बदल गई हैं । अगर पार्टी के बदले दौलत ख़तम हो गई है । ख़तम हो गई है तो क्या है ? फिर आ जाएगी । धन दौलत तो हाथों की मैल होती है । मैं बताऊँ ? कबीर ने एक दोहे में कहा है । (याद करने के प्रयास में) हां हां—एक दोहा लिखा है जिसे मैंने पढ़ा है कहीं । ठहरो उसे देख कर बताता हूँ ।

(प्रस्थान)

दतावंती—(आंसू भर कर) एक घड़ी भी चुप नहीं रहते, मैं कहती हूँ दिमाग़ को कुछ हो तो नहीं गया । रात सोए सोए उठ कर बैठ जाते हैं । फिर अपने आप से बोलते रहते हैं ।

बलवंत—किसी दूसरे शहर चलो । इस वातावरण से कुछ निकल जाओ । हमारे शहर चल रहो ।

रानी—हां माता जी । जब यहां रह नहीं सकते—

दयोवंती—पर वह छोड़ने को तैयार तो हों । जाना तो मानें ।

महिंदर—वहां जा कर भी क्या करें ?

बलवंत—कोई भी काम । छोटा मोटा अपनी हैसियत जैसा ।

महिंदर—(हैरानी से) हैसियत जैसा ? वह हैसियत क्या है ?

बलवंत—वह एक बदली हुई वास्तविकता है । बिगड़ी हुई किस्मत है । या समझो एक दंडित स्थिति है । जो एक तो क्या कई बार कई पीढ़ियां झेलती हैं ।

महिंदर—(घबराहट में) नहीं । यह तो—यह तो थोड़े समय के लिए ग्रह आया लगता है । हालत थोड़ी बिगड़ गई है ।

बलवंत—जब कुछ विगड़ जाए तो उस के संवरने में समय लगता है। सबर और श्रम करने की जरूरत पड़ती है।

महिंदर—(टहलता सा) भला वहां क्या मिलेगा ? कितना दिला सकेगा ?

बलवंत—इतना ही जितने से तुम इस सब से बाहर निकल सको। नए सिरे से सब फिर शुरू कर सको। नई सलेट से।

महिंदर—मैं नहीं मान सकता। तुमने इलैक्शन में कोई सहायता नहीं की। अपना भी तुम क्या कर सके हो !

बलवंत—हां—मानता हूँ तब सहायता नहीं कर सका। पर अब करूँगा।

महिंदर—(चार पाई पर लेट कर) कल मैं कमिश्नर से मिलूंगा।

रानी—पांच बार तुम कोशिश कर चुके। उसने समय ही नहीं दिया।

महिंदर—आखिर कब तक नहीं देगा ? मैं पुराने दिनों की दुहाई दूंगा ! वह ज़रूर कर्ज़ देने की वात मान जाएगा ! फिर उस पैसे से मैं नया विज़नैस शुरू कर सकूंगा !

बलवंत—मेरे प्यारे भाई ! विज़नैस का मतलब है आर्डर। लाईसैंस, और परमिट। इन्हें देती है सरकार। सरकार का मतलब है एक नई राजनीतिक पार्टी जो तुम्हारी दुश्मन है।

महिंदर—(उठ कर बैठता हुआ) नहीं—अन्दर से राजसी लोग एक होते हैं ! मैं पिता जी को साथ लेकर मुख्य मंत्री से मिलूं गा। कोई बड़ी बात नहीं—वह जरूर इन पर दया करेगा।

बलवंत—हां हां—क्योंकि यह जो दया करते रहते थे।

दयावंती—क्यों नहीं !—इन्हों ने लोगों पर हज़ारों उपकार किये। अगर नई सरकार नहीं सुनेगी तो भगवान हमारी सुनेगा।

बलवंत—हां—वह तो सुनेगा ही। क्योंकि उसे सुनने की आदत जो है। हर दुखिया उसे अपने दुख सुनाता है। हर आवाज़ उस के कानों में जाती है। पर न जाने क्यों वहीं पर गुम हो जाती है। उस की गूंज भी सुनाई नहीं देती। (रामउपकार आता है)

उपकार—यह सारा ताना बाना—यह सारा समाज—इस की सारी रीतियां—सारे रिवाज—यह सब परिवार परवरी के लिए बनी हैं। यहां देश या मनुष्य के लिए भी कुछ हो। कुछ भी नहीं। हर किसी में एक लालसा पनपती है। कि वह धन प्राप्त करे। जैसे भी हो सके, वह पुत्रों पोत्रिओं—यहां तक कि उन से अगली संतानों के लिए भी असीमित धन इकट्ठा करे। लोग यह चाहते ही नहीं बल्कि दूसरों को ऐसे करते देख कर इस के विरोध की जगह उन की नकल करते हैं। इसी लिए लूट घसूट और भ्रष्टाचार यहां रोके नहीं जाते।

बलवंत—तब तक जब तक परिवारी भावनाएं तोड़ी नहीं जातीं। यह रीतियां खतम नहीं होती !

उपकार—क्या कोई जन्मा है खतम करने वाला ?

बलवंत—जन्मा नहीं तो जन्मना चाहिए। मैं पूछता हूँ क्या नेताओं का यही काम है कि वह हर बुरी प्रवृति को अपना लें ? या नई जानदार लहरें पैदा करें ?

उपकार—कोई पैदा करता है तो करे। महात्मा गांधी करता हुआ खतम हो गया। उस के नाम को व्यवसाय का साधन बनाया गया। उसकी लहर क्यों न अपनाई गई ?

बलवंत—क्योंकि वह परिस्थितियों के अनुकूल न निकली।

उपकार—(उत्तेजित स्वर में) बरखुरदार—यहां कई लहरें आई समाज रूपी साहिलों से बार-बार टकरायीं और खतम हो गईं। उन के प्रभाव कुछ देर के लिए कहने मात्र पड़े। लोग उन पर चल न सके। जिस माया जाल की दलदल में थे उसी में फिर समा गए।

बलवंत—क्योंकि उस दलदल से निकालने के लिए कोई ऐसा नेता न मिल सका जो लगातार तबदीली की राह पर चलने योग्य बना सकता

उपकार—हां हां। और वह नेता अब तेरे रूप में देश को मिल गया। (हंस कर) हा हा हा ! आत्मसंतोष के यहां ठिकाने कहा हैं मेरे लाल ! जिस नस्ल को धाड़वियों के बेगिनत्त हमले न बदल सके। जिसे दुनियां के वादों के

प्रभावों ने परिवर्तित न किया ! जिसे विज्ञान और पश्चिमी विचारधारा ने न बदला ! जिस के लिए समाजवाद एक बेजान नारा बन कर रह गया। वह समाज क्या बदलेगा ? (टहलता हुआ) यहां हर नेता का जनून मिट जाता है। हर लीडर की लीडरी ठण्डी पड़ जाती है। और रह जाता है कोरा पदार्थ-वाद ! जो मनुष्य को हैवान बना दे और अपने कर्तव्यों से बेमुख कर दे। यह ग़लत है कि हम अध्यात्मक लोग हैं। हम तो कटड़ पदार्थवादी होते हैं।

बलवंत—आप हर कर्म को विचार का रूप दे देते हो। काम की जगह खाली बातें रह जाती हैं। इसी लिए आप की परख मुझे अंतिम परख नहीं लगती।

उपकार—(आकर बैठता हुआ) हां—यहां हर कर्म की जगह केवल बातें होती हैं। और कुछ नहीं होता। पर मैं थक गया हूँ। मुझे परस्थितियों ने निकम्मां कर दिया है। आज—आज कबीर के दोहों की मुझे ज़रूरत पड़ गई है। अरे कहां फैंके गये हैं ?

दयावंती—जी आप ने ही रद्दी कागज समझ कर फैंके थे।

बलवंत—क्योंकि तब उन के अर्थ समझ में नहीं आते थे।

दयावंती—मेरे मना करने पर भी फैंक दिये थे। रानी की उसी दिन तो सगाई थी। (यादों में खो जाती सी) लोग चारों तरफों से आ रहे थे। सर झुका कर आते थे। सर झुका कर बैठ जाते थे। सौ सौ—दो दो सौ—हज़ार हज़ार के नोट और उपहार दे जाते थे। मना करने पर भी दे ही देते थे। (अन्दर चली जाती है)

उपकार—घर धन दौलत और इज़्ज़त से भर गया था। बुरी नजर ही लग गई। शायद !

महिंदर—पर मैं समझता हूँ आप इलैक्शन कमेटी वालों को ठीक प्रभावित नहीं कर सके। उसी से पार्टी में फूट पड़ गई।

उपकार—(उत्तेजित होकर) नहीं, नहीं—नहीं। यह समझ कि इलैक्शन कमेटी मुझे ही नहीं संभाल सकी। कहने लगे। तुम बलिदान के बकरे ही बन जाओ। (हंस कर) हा हा हा। अगर मैं नहीं जीत

सका तो पार्टी भी हार गई। आ गया मज़ा उन्हें भी।

महिंदर—पर सभी आप के तो हुए, मेरे भी दुश्मन क्यों बन गये ?

उपकार—तुम में और मुझ में अन्तर क्या था बेटा ?

महिंदर—हां—कहते हैं मां बाप के पाप बच्चों के सामने आते हैं।

उपकार—(क्रोध में उठ कर) क्योंकि तुझ जैसा बददिमाग, और बददियानतदार बेटा मेरे घर जन्मा। तेरे कर्म मेरी जिन्दगी के घब्बे बन गये। धब्बे। बेटा बाप के नाम को रोशन करता है। पर तू ? तू ने मेरे रोशन नाम को मिट्टी में मिला दिया।

रानी—छोड़ो भी इस बात को बाबू जी।

महिंदर—देखा ! अपनी ग़लतियों का भार मुझी पर फैंकते हैं।

उपकार—(संभलता सा) तू गलतियों से कहां बरी है ? बार-बार इसी बात पर आ जाता है। बार-बार दोहराता है।

महिंदर—मैंने तो यूंही बात कर दी। आप व्यर्थ इस पर भड़क उठते हैं। (नीचे फ़र्श पर बैठ कर) अगर कोर्ट मेरी फ़र्मों से ताले हटा ले। कहीं से कुछ कर्ज़ मिल जाए—तो कुछ ही दिनों में गरीबी के इस धब्बे को मिटा दूं।

उपकार—(लम्बा सांस लेकर) कोई दोस्त नहीं रहा। बस अन्धेरा ही अन्धेरा है। अन्धेरा ही अन्धेरा !

बलवंत—इसी लिए चाहिए कि मनुष्य न्यायशीलता से ताकत का प्रयोग करे। उस की अच्छाई ही उस की शक्ति बन जाए। पर यहां तो दूर की किसी को सूझती ही कम है।

उपकार—(टहलता हुआ) यह व्यवस्था ही अमानवीय व्यवस्था है। जो कल दोस्त थे वे आंखे फेर गए हैं। जो निचले थे वे हाकिमों में बदल गये हैं। हाकिमों में—अपने से अच्छों को दंड देने को। क्योंकि दंड देने वाली मशीन के वे पुर्ज़े जो हैं। (दयावंती आती है)

दयावंती—जी छोड़ो यह बातें। खाना तैयार पड़ा है।

महिंदर—क्या बनाया है आज ?

दयावंती—चने की दाल। तंदूरी रोटियां। और साथ प्याज हैं।

महिंदर—यह रोज-रोज चने की दाल क्यों ? बीमार करने को ?

दयावंती—दूसरी दालें तीन तीन रुपये किलो की कोई कहां से लाए ? सब्जी भी कहां से आए बेटा। पैसे हों तो लाऊँ।

उपकार—(अशान्ति से) हां हां—न ला। यह बातें छिपी ही रहने दो (बैठ कर) ऐसा लगता है जैसे यह सभी वर्ष, वर्ष नहीं थे। सपनों के बेगिनत टुकड़े थे। हर टुकड़ा एक फूल की तरह कोमल और सुन्दर था। पर आज ! आज वे सारे ही सपने कांटे बन गए हैं। ऐसे है जैसे पत्थरों और कंकड़ों पर हम पड़े हों। हर तरफ़ सुनसान और बंजर सी धरती हो। हरयाली का कहीं निशान तक न हो।

दयावंती—छोड़ो भी। चलो उठो जी ! तंदूर की गर्म रोटियां हैं। मैं पोने में लपेट आई हूँ। आसानी से खाई जाएँगी।

उपकार—हां हां—आसानी से बल्लिये। खुश्क जो हैं। दाल में भी घी जो न हुआ। (उठ कर दीवार के सहारे खड़ा होकर) आज याद आते हैं वे दिन। जिस बात का तुम नई पीढ़ी के लड़के लड़कियां विश्वास नहीं करोगे।

दयावंती—हां हां—पर क्या पड़ा हैं उन बातों में।

उपकार—मेरे पिता (बैठ कर) डाक खाने में बाबू थे। यही पचास के करीब वेतन लेते होंगे। पर तब पचास किसी खज़ाने से कम नहीं लगते थे। घर पांच सेर दूध एक आने सेर के हिसाब से। एक रुपये में सवा सेर देसी घी जो दस सेर आता था। और न जाने कितनी ही दूसरी मिट्टी के भाव चीज़ें आती थी। हम शहर के पतवंते समझे जाते थे। (हंस कर) हा हा हा। वह भी दिन ही थे। जब गरीब भी दूध और घी सेवन कर लेता था। पर आज का बाबू ! चार पांच सौ लेने वाला बाबू मुझे एक घसियारा दिखाई देता है। मैं बाबुओं को कालोनियों में रहते देख चुका हूँ। उन की हालत व्यवस्था ने बुरी तरह से बिगाड़ दी है। घर एक अव्यवस्थित सराये के रूप में देखने को मिलते हैं। जहां टूटी फूटी एक आध चार पाई, मैले कुचैले कुछ कपड़े। खाली दीवारें और नंगे फ़र्श होते हैं। उन के हड्डियां निकले डोलते

ढालते शरीर इस बात के साक्षी बन गए हैं कि उन के भाग्य दूध घी का ठुकरा चुके हैं।

बलवंत—क्या उन के लिए स्वतन्त्रता का यही अर्थ हो जाना था? कहां हैं वे लोग जो आज़ादी के लिए प्राणों का बलिदान दे गये। क्या इसी व्यवस्था के लिए वे लड़े थे?

उपकार—हां—इस के हम ही उत्तरदाई हैं। पर हमारे यहां कोई उत्तर नहीं। क्योंकि हमने पहले मध्यमवर्ग को लूट कर एक अमीर व्यापारियों और उद्योगपतियों का वर्ग उत्पन्न कर लिया हैं। सरकारी कर्ज़ों, लाईसैंसों, आडरों और परमिटों के बल पर। जिस के अधिक लोग व्यवस्था के तरफदार और निकट भागी हैं—(घंटी की आवाज आती है)

महिंदर—(जाता हुआ) कौन हैं! कौन हो सकता है इस समय। (प्रस्थान)

उपकार—होगा कोई नये मंत्री के सम्बन्ध राह पता पूछने वाला। और कौन हो सकता है आज कल! (महाराजकृष्ण, एक पुलीस अधिकारी और महिंदर आते हैं)

महिंदर—(खुशी में) लो अंकल जी आए हैं। देखा न आप याद ही कर रहे थे?

महाराज—मैं सरकारी काम पर आया हूँ।

उपकार—(मुस्करा कर) खुशी से आओ। सरकारी आदमी जो हुए। आप का आभारी हूँ जो सरकारी काम के बहाने तो आए। तुम सम्बन्धी ही नहीं—गहरे मित्र भी हो। हैरान था सारा परिवार इस संकट में हमें भूल कैसे गया!

महाराज—(गम्भीरता से) मैं समझता हूँ आप को किसी भूल में नहीं रहना चाहिए। मुझे केवल सरकारी आदमी ही समझोगे तो मेरा काम आसान हो जाएगा।

उपकार—(हंस कर) मानते हैं सरकारी अफ़सर हो यार। पर इस से हमारे सम्बन्धों में फ़र्क तो नहीं पड़ता।

महाराज—फ़र्क पड़ने न पड़ने पर किसका वस है ? हमारे कर्तव्य इन से कहीं अधिक ज़रूरी हैं।

उपकार—(गम्भीरता से) ठीक है। मानता हूँ। पर तुम इन्सानी नाते भी वहुत कुछ हो। मेरे मित्र हो और होने वाले—

महाराज—यह बातें विल्कुल वेकार हो गई हैं लाला जी। आप देखते नहीं मैं सरकारी कर्मचारी की हैसीयत से आया हूँ ? मेरी कर्त्तव्य-परायणता देखी जा रही। मुझे एक जरूरी काम है।

उपकार—ओह !—कौन सा काम है ?

महाराज—क्या आप जानते नहीं कि यह कोठी एक मंत्री के लिए निश्चित होती हैं ?

उपकार—(पीछे हटता हुआ) हाँ—मैं जानता हूँ !

महाराज—आप को मंत्री पद से हटे कई महीने हो गए हैं। इसे आप ने छोड़ क्यों नहीं दिया ?

उपकार—(उत्तेजित सा) क्योंकि सरकार ने इस योग्य ही नहीं रहने दिया। मेरे साथ एक अपराधी का सा वरताव पकड़ लिया है नई मिनिस्ट्री ने। मेरे बेटे के सारे बिज़नैस पर कब्ज़ा कर लेना। कई एक मुकदमें चला देने ! जायदाद कुड़क कर लेनी। इन परिस्थितियों ने हमारी कमर तोड़ दी है।

महाराज—क्योंकि सरकार इस विज़नैस पर गहरा शक रखती है। आप पर भ्रष्टाचारी के दोष हैं। उन की भी छान-बीन हो रही है। पर इन बातों का कोठी से कोई सम्बन्ध नहीं। आप यह खाली कर दें।

उपकार—खाली करके कहां जाएं ?

महाराज—जहाँ जाना हो जाओ। सरकार को शक्ति का प्रयोग करना पड़े, इस के लिये मजबूर न करो।

उपकार—(रोष से) सरकार वेशक शक्ति का प्रयोग कर ले। हिरासत में ले ले। लोग भी वह जुल्म देख लें जिसे हम अकेले देख रहे हैं। लोकतंत्र के नेता—

महाराज—(व्यंग से) लोकतंत्र के लुटेरे भी हो सकते हैं। आजकल यह भी धारणा बन चुकी है।

उपकार—(गम्भीरता से) तुम ने मुझ जैसे लुटेरों से कई लाभ उठाए हैं महाराज कृष्ण। यहाँ तक कि तुम्हारी सारी हैसियत मेरी बदौलत ही यूँ बनी है।

महाराज—(पीछे हट कर) वह सब ठीक नहीं था। मैं छोड़ चुका उन सारी बातों को।

उपकार—क्योंकि तुम हर नये मालिक के लिए अपने आप को बदल लेते हो। पुराने को जूता समझते हो, और कहीं पटक देते हो। क्यों इसी लिए कहते हो ?

महाराज—मैं बेकार की बहस नहीं कर सकता।

उपकार—क्योंकि सच्चाई का दूसरा रुख तुझे पसंद नहीं आता।

दयावंती—(आगे आ कर) आप ऐसा कहते अच्छे नहीं लगते भाई साहब। आप हमारे समधी हुए। यह बातें कैसे कह सकते हैं।

महाराज—जी हम सरकारी कर्मचारी हैं। इस से बढ़ कर कुछ भी नहीं। वह तो आप की राजनीतिक चाल थी। हमें हथियार बना कर लोगों में बढ़ाई कमाने की।

उपकार—(सदमें से)—क्या मज़ाक कर रहा है यार ? आज तुम्हारी हर अदा बदली हुई लगती है।

महाराज—मज़ाक नहीं लाला जी ! जो बात होने से पहले ही बदनाम हो जाए ! और फिर मैं इस गठजोड़ से अपना और अपने लड़के का भविष्य क्यों बिगाड़ूँ ?

उपकार—(चिल्ला कर) यह बात तभी सोच ली जाती ! तब भी बिगड़ सकता था।

महाराज—तब और अब का बेहद अंतर है ! पर—मैं इस बच्ची के सामने आप को क्या कहूँ ! (भीतर को जाता है, बलवंत और रानी के सिवा अन्य भी पीछे चले जाते हैं)।

वलवंत—अंतर पैसे, ताकत और हैसियत का है, जिन के वदले लोग वेटियों वेटों के सौदे कर लेते हैं। तुझे कैसे लगा है रानी ?

रानी—(दीवार के सहारे खड़ी हो कर) कह नहीं सकती ! पर मुझे यही डर था।

वलवंत—तुम्हारा दिल आखिर दिल है। एक भारतीय लड़की का दिल ! जो टूट कर कई वार मिट्टी वन जाता है। जव उस की पतिदेव वाली भावना टूट जाती है।

रानी—(उसे अपलक देखती हुई) क्या यह भावना कोई स्वस्थ्य भावना होती है ?

वलवंत—(पीछे को मुड़ता हुआ) भावना एक व्यक्तिगत वात है। एक ज़ोर है। कमज़ोरी भी है।

रानी—मैं अपने आप भी चल सकती हूँ। अगर भूकम्प से राह विगड़ जाए। आगे कुएं खड्डे हो जाएं। ज़रूरी नहीं उन में छलांग लगा दूं !

वलवंत—हां—इस तरह भटके कदम कभी ठीक राह पर भी पड़ सकते हैं। जिन्दगी का सफ़र लगातार हो सकता है। कोई किसी दुर्घटना से ज़िन्दगी भर अपाहिज नहीं वना रहता।

रानी—(मुस्कान भर कर) हां वलवंत ! मुझे ऐसे भी लगता है जैसे मैं किन्हीं वन्धनों से आज़ाद हो गई हूँ। मेरे लिए कई राह खुल गये हैं।

वलवंत—(मुस्करा कर) जिन राहों पर परम्परा और रिवाजों की वंदिशें न हों ! जहां जिन्दगी आज़ाद हो।

रानी—हां हां—(अंगड़ाई ले कर) जो ज़िन्दगी और उमंगों के राह हों। जहां लालच फ़रेव और संसारिकता की रोकें न हों। जहां डरों से कोई वन्धा भी न हो। जहां संतोष हो, सच्चाई हो, सेवा भरा साहस हो। वेटी वेटे की जगह सच्चे मर्द और सच्ची नारियां हों—सच्चे मानव हों !

वलवंत—(उस का हाथ पकड़ कर) हां हां—दहेज की जगह

प्यार हो। उमर भर के लिए प्यार और निष्ठा से जी सकने का इकरार हो। उस इकरार में सच्चाई हो रानी। सच्चाई में ही भलाई होती है। सभी की भलाई। सच्चाई को जी सकने, मान सकने और सह सकने की शक्ति भी हो।

रानी—(खुशी से) हां बलवंत—यही ! तुम कितनी दिल की बातें करते रहते हो ! लगता है नई पीढ़ी ऐसी ही हो जाए । अगर तुम्हारी बातें समझी जा सकें ।

बलवंत—हां—यही बातें हैं जो पुरानी पीढ़ी अपने में ला नहीं सकी। और वह हर किसी का विश्वास खो बैठी है । उस की कहनी और करनी बेमेल हो गई हैं। (उस के और समीप होता हुआ) जब कोई विश्वास खो देता हैं तो उसका कुछ भी नहीं बचता। वह खोखला और बांझ हो जाता है। यही स्थिति सारी कौम की हो चुकी हैं । इससे उभरने में ही हम सब का कल्यान है। क्या इस काम में मेरा साथ दे सकती हा ?

रानी—(गदगद सी) ओह—क्यों नहीं बलवंत ? मेरे प्यारे बलवंत ! मैं तुझे पहले क्यों नहीं अपना सकी ! क्यों नहीं पहचान सकी ?

बलवंत—(उस की कमर को दोनो हाथों से थाम कर) क्योंकि समाज ने हमारे इर्द-गिर्द भ्रमों के जाल बिखेर रखे हैं। मनुष्य को मनुष्य से जुदा रखने को कई तरह की दीवारों के जाल। मैं सदा तेरी कामना लिए यहाँ आता था। वह कामना मेरी जिन्दगी की राह रोक कर खड़ी थी। मुझे हर तरफ़ अंधेरा ही दिखाई देता था। मेरा आगे बढ़ना रुक गया था। मुझे हर कोई यहां कोसता था । पर तुम्हारे कारण मैं सब कुछ झेल लेता था। क्योंकि तुम मेरे दिल और दिमाग पर छा चुकी थीं ! और मैं आवारा—आदर्शहीन सा लगता भटकता रहता था। मेरे दूसरे सब काम भी होने रुक गये थे। पर अब लगता है कि निष्ठा से पहाड़ तोड़े जा सकते हैं ।

रानी—(भावुकता में आलिंगनबद्ध होकर) ओह बलवंत !—ओह मेरे प्यारे ! मुझे लगता है तुझे पहचान कर मैंने सारी सृष्टि पहचान ली है। मेरे भटके कदमों को नई राहें मिल गई हैं। (उन की बेखबरी में अन्य

सभी प्रवेश करते हैं। जो उन्हें उस मुद्रा में देख कर हके बके रह जाते हैं)

उपकार—(शर्मिन्दगी में) रानी ! यह क्या है । बलवंत—यह मैं क्या देख रहा हूँ ? क्या यह तू ही है जो इतनी बढ़ चढ़ कर बातें करता रहता है ?

(दोनों परेशानी में अलग-अलग हो जाते हैं)

महाराज—(घृणा से) इस लड़की के लिए तुम रोना रो रहे थे ? इस बदचलन के लिए ? और इस बदतमीज़ आवारा लड़के को तुम मासूम समझते थे ! देखो ! इन का किस बेशर्मी का नाच है !

बलवंत—(दीवार का सहारा लेकर) हां—अगर मनुष्य की प्रबल दयानतदार भावना बेशर्मी का नाच है तो हम यह नाच ज़रूर नाचेंगे। अगर यह अपराध है तो हम इसकी हर सज़ा के लिए तैयार हैं !

रानी—पर यह अपराध कैसा ? यह प्रकृति की सब से बड़ी सच्चाई है ! सच्चाई में ही निष्ठा हो सकती है। इसी से प्यार और साहस मिलता है ! जिन के बदले मर मिटने की बेअंत ताकत आ जाती है। पर आप ? आप सब ने तो हमारी गरीबी देख कर ही मुँह फेर लिए। आप में कौन सी शर्म है जिस के बल पर दूसरों को कोसते हो ?

महाराज—(पुलिस अधिकारी से) बदतमीजी और बेशर्मी क्या एक ही बददिमाग़ी के नाम नहीं होते ?

अधिकारी—(हंस कर) हा हा हा ! मैं ने तो कहा भी था । बहसों में पड़ने का फ़ायदा ही क्या है ?

महाराज—है फ़ायदा ! कम से कम मेरी कान्शस क्लियर हो गई। नहीं तो ऐसी बदचलन लड़की के बदले—

उपकार—(रोष से) यह तुम नहीं कह सकते महाराज कृष्ण ! उसने जो किया है वह तुम लोगों की नीचता का बदला लिया है । बल्कि भटके कदमों को एक दिशा दे दी है।

महाराज—खेद है लाला जी ! क्या यही है लाज और शर्म जिस पर भारत को गर्व है ? जिस की शिक्षा हर लड़की को माँ की लोरी के साथ

मिलती है।

बलवंत—(व्यंग भरे क्रोध से) और लड़कियों को मनुष्य की जगह हम गाय बना देते हैं। भेड़ें बकरियां बना लेते हैं! ताकि हर ज़ुल्म, हर अन्याय, और हर ज़्यादती वह पशुओं की तरह सह लें। उमर भर दिल जलें पर सी न करें! यह चमत्कार है उस ग़ुलाम बज़ुर्ग पीढ़ी का जो देश को अभी तक ग़ुलामी ही दे सकी है। ज़ात-गात के ग़ुलाम रीतियों रिवाज़ों के ग़ुलाम। रुपये पैसे की लालसा के ग़ुलाम। दहेजों और कोठियों के जनूनों के ग़ुलाम!

अधिकारी—मेरा विचार है हमें कारवाई करनी चाहिए। इन बातों में क्या पड़ा है?

महाराज—(निरुत्तर सा) हाँ—महिंदरकुमार को हरासत में ले लो। इसके विरुद्ध भ्रष्टाचारी के संगीन केस हैं। वारंट देख सकते हो। (एक कागज़ आगे कर देता हैं। पुलिस अधिकारी महिंदर को हाथ से पकड़ लेता है।)

उपकार—(स्तब्ध सा) देखो दीवान जी! इसे छोड़ दो अभी छोड़ दो! यह निर्दोष है। इसके ज़िम्मेदार हम ही थे।

दयावंती—(रोती हुई) हाए—मेरा बेटा! मेरा लाल! इसे क्यों पकड़ते हो।

बलवंत—रहने दो मौसा जी। मौसी जी! रोना किस बात का? कोई भी आदमी जो आप अपराधी है, वह दूसरों पर कीचड़ नहीं उछाल सकता! इन के हाथ भ्रष्टाचार से रंग हुए हैं। इन आरोपों को यह नहीं लगाएँगे। क्योंकि आप भी फंसते हैं।

उपकार—(उत्तेजना से) हाँ हाँ! हम चाहे प्रायश्चित करते हैं, पर इनका दामन अभी मैला है। ले जाओ—बेशक ले जाओ! हम यह भी सह लेंगे! तुम्हारे अब के सम्बन्ध बता भी सकेंगे।

(महाराज कृष्ण शर्मिन्दगी भरी हंसी हंसता हुआ महिंदर और पुलिस अधिकारी के साथ बाहर चला जाता है)

दयावंती—(रोती हुई) सब कुछ खो दिया है—सभी कुछ—(आंसू

पूँछती मौन हो जाती हैं) ।

उपकार—(उदासी में सर नीचा किये वैठता हुआ) हाँ—लगता है—कुछ नहीं बचा ।

वलवंत—ऐसा लगता है जैसे हल जोत कर खेत की ज़मीन ऊपर नीची हो गई हो । (वैठ जाता है) वही इस घर का हुआ है ।

उपकार—यही तो हुआ है । धन गया है । इज़्ज़त गई है—वेटे-वेटी के भविष्य का कोई भरोसा नहीं रहा । (खिड़की के पास जा खड़े होते हैं)

वलवंत—जव मुसीवत आ ही गई तो उसका कोई तो रोशन पहलू देख ही लें । (कुछ सोचता हुआ) मैं सोचता हूँ मौसा जी ! क्या ठीक फ़सल हल जोतने के वाद ही नहीं होती ?

उपकार—ठीक है ! पर फ़सल और है, मनुष्य और हैं ।

वलवंत—दोनों के रूप अलग-अलग हैं । पर उनकी जीने और पनपने की परस्थितियां तो अलग नहीं होतीं ? हमारा जीवन परम्परा रूपी घास के नीचे दवा रहता है । क्योंकि परिवर्तन रूपी हल इस पर जोता नहीं जाता । इसलिए समाज विकासशील नहीं वनता ।

उपकार—(हंस कर) परिवर्तन तो आते ही हैं । दु:ख इस वात का है कि उनका चलन उलटे पाँव का होता है ।

वलवंत—हाँ—हाँ—प्रतिक्रियावादी । व्यवस्था का काम है कि वह जनता को नियंत्रित और कानूनवद्ध करे । पर हमारी इस व्यवस्था ने समाज को केवल अपराध ही दिये हैं—उन अपराधों को रोकने के लिए दंड देने की परिवृती को रोक ही लगाई हुई है, क्योंकि यह दंड इन्हें आप मिलते हैं, क्योंकि इनका जीवन अपराधों से सना होता है ।

उपकार—(हंस कर) इस समाज की यह नयी वात थोड़ी है ! न जाने किस काल से यह प्रवृति चली आ रही है । (वैठ जाते हैं)

वलवंत—अब इस चेतना के साथ फिर उठिये । इस लोकतंत्र की सीमाओं में रह कर ही । चाहे प्रतिशोध की भावना ही आप को उठाए—या समाज को अपराधियों से बचाने की लालसा ही क्यों न हो । अब की वार

अगर सफ़ल हुए—चाहे कितना भी संघर्ष क्यों न हो, आप समाज के विकास को बढ़ावा दे सकोगे।

दयावंती—हाए—महिंदर का तो सोचो ! मेरे महिंदर का क्या बनेगा ! तुम्हें तो दूसरी ही बातें सूझती हैं।

बलवंत—जो कुछ आज तक बना है मौसी जी ! उससे अलग क्या बनेगा ? उसके अपराध दूसरों के अपराधों की लड़ी के अपराध हैं। वह हरगिज़ नहीं चाहेंगे कि अपराधों की यह लड़ी टूट कर सारे अपराधों के दाने लोगों की नज़रों के सामने बिखर जाएँ।

उपकार—(उठ कर चलते-चलते) यह तो ढोंग रचा गया है नई मिनिस्ट्री के मनोरंजन के लिए। (फीकी सी हंसी हंस देते हैं)

दयावंती—रानी का भी सोचना है।

रानी—वह तो हम सोच चुके माता जी। एक बात पर बार-बार क्या सोचना है।

बलवंत—(मुस्करा कर) हां मौसी जी। चाहो तो कोर्ट ले चलो। चाहो तो किसी मन्दिर गुरुद्वारे।

दयावंती—पर बलवंत शादी कोई मामूली बात थोड़े होती है। जो ऐसे में कर डालेंगे।

बलवंत—मैं शादी को जिन्दगी की एक आवश्यक शुरूआत तो समझता हूँ मौसी जी। जिन्दगी की सबसे बड़ी समस्या और बोझ नहीं मानता। और मैं तो समझता हूँ जब तक शादी एक साधारण बात में नहीं बदलती, हमारी समाजिक जिन्दगी कभी नहीं सुधर सकती।

उपकार—(फीकी हँसी हँस कर)—तू—भी हर नेता की तरह आदर्शवादी ही रहेगा यार—अरे यह समाज—यह बात कभी स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि जो धनवान हैं, जिनके हाथों में सत्ता है वह धन के बल पर तो शादियां रचाते हैं। जो उन की हित की होती हैं। वह ऐसे प्रचार के भी दुश्मन हैं। क्योंकि अपने बच्चों के लिए धन के बल पर अच्छे वर खरीद सकते हैं।

बलवंत—(मुस्करा कर) तो फिर आर्शीवाद दीजिए—इस बात पर हम तो चलें ! जिनके हित में वह सब नहीं—अगर वह फिर भी रुके रहते हैं, तो रुके रहें। हम तो आगे बढ़ें। (आगे बढ़ आता हैं)

उपकार—(स्नेह से उसके कंधे को थपथपाता हुआ) भगवान करे इस पड़ाव पर पहुँच कर तुम्हारे दोनों के कदम आगे ही आगे बढ़ें। जो हम से नहीं हो सका वह तुम लोगों से हो जाए—देश को नये कर्मवीर नेता मिलें—

(महिंदर आता है)

दयावंती—(खुशी में) ओह—मेरा लाल ! (उठकर उसे गले लगा लेती है)

महिंदर—(मुस्करा कर) उन्होंने वापिस भेज दिया है। पुराने सम्बन्धों के नाते। कहते हैं कह देंगे घर पर मिला नहीं—और इस बात पर फिर से विचार किया जाएगा।

(हंसी के कुछ स्वरों के बीच पर्दा गिरता है)

॥ समाप्त ॥

लेखक की अन्य हिन्दी रचनाएं

१—दो संसार (उपन्यास)

पृष्ठ २०६—एक मार्मिक समाजिक कथा इस तरह से प्रस्तुत की गई है कि आप दो प्रकार के समाज, दो प्रकार के लोग और दो प्रकार के संसारों के स्पष्ट अथवा अस्पष्ट चित्र देख लेते हो और अन्त में उस तथ्य को जो सत्य होने के कारण कटु है और साथ ही तीक्ष्ण भी, जान कर यह अनुभव कर लेते हो कि आपने वह सब जो पहले नहीं देखा था, उसे देख लियां है।— (साप्ताहिक हिन्दुस्तान)

समाज, प्रेम, आदर्श, इन सबका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। अपने चुने मार्ग पर आगे बड़ते हुए उपन्यास का नायक आदर्श समाज की खोज में तिब्बत तक जाता है। (प्रकाशन समाचार)

इस उपन्यास की दो भूमिकाएं, एक श्री जैनेन्द्र जी की और दूसरी सेठ गोविन्ददास जी द्वारा देख कर भय उत्पन्न हुआ था, पर पढ़ने पर ज्ञात हुआ कि चीनी, आक्रमण के सिलसिले में जो साहित्य इधर प्रस्तुत हुआ है उनमें से यह एक, अच्छी कृति हैं। इसमें चीनी आक्रमण के ब्यौरे में डुबकी लगाने के साथ ही साथ लेखक एक बहुत सुन्दर कहानी की रचना करते हैं। जिसमें बनर्जी आदि कई पात्र बहुत सुन्दर रूप में उभर कर सामने आते हैं।

मन्मथनाथ गुप्त (आजकल)

चर्चित उपन्यास की कथा-वस्तु में, अस्वाभाविक रूप से कोई आदर्शवादिता थोपने का प्रयत्न नहीं किया गया है। विपरीत परिस्थितियों में भी सत्य की ओर बढ़ते जाना इस उपन्यास की आधार कथा हैं:— (कादम्बिनी)

२—तुफ़ान के दिये (उपन्यास)

पृष्ठ संख्या २७०—Is a story of modern youtn, their dynamism, their attitude towards old social values, their love, hate, temptations, mistakes and frustrations which sometimes culminate in a realisation of their ideals, at a cost though. The

end of this novel is tragic and ennobling, not unlike a storm that devastates but cleanses too.

India is caught between two storms, one on the northern front and the other on the western front. It is the country's youth who have to face these storms with courage, determination and at the risk of their lives A tender love story, with patriotic background and social implications, this Hindi novel by a non—Hindi writer is to be welcomed—

(Sunday Standard—)

३—जिंदगी के मोड़ पर (नाटक)

पृष्ठ ११६—परम्परा सांस्कृतिक एकता की आधार है, पर ऐसी एकता जो आंतरिक तौर पर खोखली हो, और संस्कृति जो समय और परिवेश से बहुत पीछे छूट जाय, इसे उठाये कोई भी समाज सम्पन्न और प्रगतिशील नहीं रह सकता। हर युग की परम्पराएं उनके अनुकूल बनती हैं और बदलती हैं। भारत की आदिकालीन परम्पराएं और थीं सामाजिक ढांचा आज से बिल्कुल भिन्न था युवक-युवतियों के परस्पर व्यवहार इतने सीमित नहीं थे जितने आजकल लगते हैं। माता-पिता की ओर से व्यवस्थापित शादियों का रिवाज तो मुगलों आदि अनेक विदेशी आक्रमणकारियों के कारण पड़े। स्थितियां ऐसी बनीं कि युवतियां घरों से बाहर निकल भी नहीं सकती थीं, और उन की वही दुर्दशा होती थी जो बंगला-देश में व्याप्त हुई है।

'जिंदगी के मोड़ पर' इन दो प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच में से गुजरता एक कथानक है जो आज की सामाजिक रुढ़ियों को तोड़ने का संकल्प प्रस्तुत करता है संवाद चुस्त, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हैं। इस नाटक का मंच पर खेल सकना इसलिए भी संभव और आशापूर्ण है। कि यह आज की युवा-पीढ़ी की मनोवृत्तियों के अनुकूल है— (नव भारत टाइम्स)

वोहरा प्रकाशन, बी—७७/२ ईस्ट कैलाश, नयी दिल्ली।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. 90690
Date 26-11-98